ISSN: 0971-8478

फरवरी 2015 ₹ 10

आजकल

1945 से प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक



- रुक गया प्रवासी
- हिंदी साहित्य में वसंत
- संस्कृत साहित्य में वसंत
- विश्रामधाम सुषमा का...
- भावनाओं की उड़ान को पंख देते पक्षी
- अमर गीतों के रचयिता : कवि प्रदीप

वसंत और तीन प्रश्न

मधु पंत

क्या है वसंत ?
आनंद असीम अनंत,
सुरभित दिग्-दिगंत,
कमनीय काव्यमय कंत,
जन-मन जाग्रत, जीवंत,
हर्ष वर्ष-पर्यंत,
प्रकृति का मायावी तंत्र,
नव-जागरण का मंत्र,
स्वप्निल स्वर, स्वतंत्र?
या वसंत रंगों का सम्मेलन है?
नई तरंगों के आवेग का उद्वेलन है?
स्फूर्ति के अतिरेक का उत्प्रेरण है?
प्रकृति द्वारा अर्जित ऊर्जा का आलेखन है?
अथवा धारित्री या धारिणी धारा का स्फुरण है?
कण-कण में समाहित स्फूर्ति का स्पंदित त्वरण है?
सुख-सुविधा संपन्न निकेतन है?
या कि अवचेतन से झांकता चेतन है?

पीपल की गाछ पर गुलाबी कोपलों का नर्तन है?
वृक्षों की शाख पर पल्लवों का संवर्धन है?
भ्रमरों, तितलियों का संतुलित अनुवर्तन है?
मदहोश प्रकृति का अधिदैवत अर्चन है?
शीत का पीत को संपूर्ण समर्पण है।
कोकिला द्वारा मंजरियों को सुर अर्पण है?
कामातुर मदन के मोह के संवरण का संशोधन है?
अथवा शिव और शक्ति के मिलन का अनुमोदन है?

क्या-क्या होता है वसंत में?
भावनाओं का संदीपन,
चेतनाओं का उद्दीपन,
कोमलताओं का संयोजन,
सरसताओं का सुनियोजन,
सुविचारों का संबोधन,
संवास का संपोषण,
अनुभवों का संश्लेषण,
अनुभूति का संप्रेषण?

या कि नव-जीवन का संचार,
जयघोष सा ओंकार,
सुरों की झंकार,
भंवरों की गुंजार,
कलियों की मनुहार,
अंकुरों की बंदनवार,
विहंसता-सा कचनार,
पल्लवों की लतिकाओं से तकरार?

अथवा पारिजात के निझरते सुमन,
अंगड़ाई लिए चेतन होते उपवन,
सजे-संवरे कमनीय होते कानन,
निखरे-निखरे अरुणिम आनन,
सरसों की प्रीत से पीत हुए मन,
झूमते-इठलाते निर्झरों का सौंदर्य विलक्षण,
तरंगित लहरों पर स्वेद के कण,
चिरंतन आनंद के अलौकिक क्षण।
सुरभित मलय पवन,
निर्मल विस्तीर्ण गगन,
नए सृजन की सर्जना में मगन,
सभी जीव-प्राणी, स्वजन-परिजन?

एक तीसरा भी प्रश्न है, इन प्रश्नों से निथरता हुआ—
मन की आवाज़ को सुनता, उभरता हुआ—
क्या करें अबके वसंत
कि हो दुविधाओं का अंत?
ऊर्जा को संतुलित रख, कर सकें कर्म निर्बाध,
संयत रह सके आवेग और उन्माद।

अतिक्रमण न करें किसी की भी संवेदना का,
सुन सकें आक्रोश हर वेदना का।
वसंत की कुछ खुशियां कैसे, ऐसे संजोएं
ताकि रोम-रोम तरंगित हो पर दूसरे न रोएं?
अनुभव करें प्रकृति के अमृतमय रास का,
सुर भरी सुचेतना के सुहास का,
वसंती परिधान में अवगुंठित, उल्लास का,
किंतु निश्चित ही गला न घोटें परस्पर विश्वास का।

संपर्क : 104, पॉकेट-ए, माउंट कैलाश, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली-110065

ISSN-0971-8478

पृष्ठ 1-56

स्थापित 1945

आजकल

वर्ष : 70; अंक : 10; पूर्णांक : 837
फरवरी 2015; माघ-फाल्गुन 1936

वरिष्ठ संपादक
राजेन्द्र भट्ट

संपादक
फरहत परवीन

आवरण : **निशांत पटेल**

संपादकीय पत्र व्यवहार :
संपादक
आजकल : प्रकाशन विभाग
कमरा नं. 120, सूचना भवन
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003
फोन : 2436 2915
ई-मेल : ajkalhindi@gmail.com

website : www.publicationsdivision.nic.in
फेसबुक आईडी : www.facebook.com/publicationsdivision

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) :
वी. के. मीणा

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक : 100 रुपये; दो वर्ष: 180 रुपये;
तीन वर्ष : 250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक से)
एक वर्ष : पड़ोसी देश : 330 रुपये
शेष विश्व : 730 रुपये

सदस्यता संबंधी पूछताछ :
सूर्यकांत शर्मा
वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
फोन : 26100207
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

टाइपसेट : **ज्योति लेजर टाइप सेटिंग**

इस अंक में

लेख

7. रुक गया प्रवासी	**पराक्रम सिंह**
9. हिंदी साहित्य में वसंत	**अजय कुमार मिश्र**
12. संस्कृत साहित्य में वसंत	**केशव प्रसाद वाजपेयी**
14. इन डारन वे फूल (ललित निबंध)	**वेदप्रकाश सिंह**
17. हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य में वसंत	**सुधा बाला**
21. निराला का काव्य और वसंत	**पंकज परिमल**
23. बसे सो वसंत (ललित निबंध)	**रामशरण युयुत्सु**
25. रुत वसंत की, दिन फाल्गुन के	**भुनेश्वर भास्कर**
27. भावनाओं की उड़ान को पंख देते पक्षी	**शिवचरण चौहान**
30. खंखर भया पलाश	**रमेश तैलंग**
33. बालपत्रिकाओं का परिदृश्य	**अनामिका**
35. विश्रामधाम सुषमा का : 'धूमाकुल सुषमागृह ज्यों जल गया'	**उद्भ्रांत**
39. आचार्य शास्त्री की याद	**वरुण भारती**
40. समय के हाथों आदमी भी बंध जाता है	**प्रदीप सरदाना**
51. अमर गीतों के रचयिता	**पं. विजयशंकर मिश्र**
54. युवा संगीतकारों का उत्सव	

कहानी

32. दूसरा तलाक़ (उर्दू कहानी)	**रतन सिंह**
46. दलदल	**सुशांत सुप्रिय**
49. दो लघुकथाएं	**विजया लक्ष्मी सिन्हा**

कविताएं/ गीत

31. बेटी	**वंदना वीथिका**
42. कविता	**आलोक देशवाल**
43. तीन नवगीत	**श्यामसुंदर दुबे**
44. मौसम गीत	**अरविंद कुमार 'साहू'**
दो कविताएं	**सुमन लता**
45. दो कविताएं	**अशोक विश्वकर्मा**
50. तीन वासंती गीत	**मदन मोहन पाण्डेय**

आवरण II : वसंत और तीन प्रश्न : **मधु पंत**

आवरण III : तीन गीत : **गौरीशंकर पाण्डेय 'अरविंद'**

हमारे विक्रय केंद्र : नई दिल्ली: सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260; **लखनऊ:** हाल नं. 1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455; **कोलकाता:** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030; **पटना :** बिहार रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 0612-2683407; **मुंबई :** 701 बी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुंबई; दूरभाष : 9522-27570686; **बंगलौर :** एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरमंगला दूरभाष : 080-25537244; **हैदराबाद :** ब्लाक-4, प्रथम तल, गृहकल्प कॉम्प्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष :040- 24605383; **चेन्नई :** राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष : 044-24917673; **तिरुअनंतपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट; दूरभाष : 041-2330650

प्रसंगवश...

आज़ादी का उड़ा तिरंगा, बापू चलते चले गए
लिया स्वराज अहिंसा से, इतिहास बदलते चले गए।

— गोपाल सिंह 'नेपाली'

युग पुरुष महात्मा गांधी ऐसे सेनानी थे जिन्होंने अहिंसा की तलवार से अंग्रेज़ों को देश से बाहर खदेड़ दिया।

सन् 1893 में एक मुक़दमे के सिलसिले में गांधी जी दक्षिण अफ्रीका गए परंतु मुक़दमा ख़त्म होने पर भारत नहीं लौटे क्योंकि वहां उन्होंने महसूस किया कि प्रवासी भारतीयों से वहां के लोगों का बर्ताव गुलामों जैसा है। रंगभेद की नीति ज़बर्दस्त है। गांधीजी लगभग 21 वर्ष तक वहां रहे और इस अन्याय के ख़िलाफ़ लोगों को जागरूक किया। इस अवधि में वह दो बार (1896 और 1901-02 में) स्वदेश आए और दो बार (1906 और 1909 में) ब्रिटेन गए। दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियों को अधिकारों के प्रति सजग कराकर, 'सत्याग्रह' का अलख जगाकर सन् 1915 में भारत लौटे फिर भारत की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अव्यवस्था, परतंत्रता के ख़िलाफ़ जुट गए।

इस वर्ष महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटने के सौ वर्ष हो चुके हैं। आइए! हम इस अवसर पर एक बार फिर संकल्प करें कि अहिंसा, प्रेम-शांति जैसे मूल्यों को अपने जीवन में उतारेंगे और अन्याय के ख़िलाफ़ सदा आवाज़ उठाएंगे।

6 फरवरी, 1915 को जन्मे 'ऐ मेरे वतन के लोगों' और 'दूर हटो ऐ दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है' जैसे देशभक्ति के गीतों के रचयिता कवि, गीतकार प्रदीप का यह जन्म शताब्दी वर्ष है। उन्होंने पांच दशक के अपने व्यवसायिक जीवन में लगभग 70 फिल्मों के लिए गीत लिखे। दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित इस आकाशधर्मा को जन्मशती पर प्रणाम!

छायावादोत्तर काल के सुप्रसिद्ध कवि आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने संस्कृत के साथ-साथ हिंदी में कविताएं रचकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। महाप्राण निराला से प्रभावित शास्त्रीजी ने कई काव्य-नाटकों की रचना की। 'राधा' जैसे महाकाव्य ने उन्हें अमर बना दिया। छायावाद के अंतिम स्तंभ शास्त्रीजी ने नए-नए प्रयोग किए। छंदों पर उनकी पकड़ ज़बर्दस्त थी। जन्म दिवस पर शास्त्री जी को याद करते हुए प्रस्तुत है कुछ विशेष सामग्री।

शिशिर की ठिठुरन समाप्त हो गई है। वृक्षों में नई कोंपलें निकल आई हैं। आम्रवृक्ष मंजरियों से लद गए हैं। चारों ओर फूल ही फूल खिले हैं। हरियाली ही हरियाली है, मानो प्रकृति ने नए वस्त्र धारण कर लिए हो। हमारे साहित्य में भी वसंत का विशिष्ट स्थान है। आइए! ऋतुराज का स्वागत करें वाग्देवता निराला की इन पंक्तियों के साथ—

स्नेह भरे बादलों में व्योम छा गया
जागो जागो
जागो सखि वसंत आ गया!

शुभकामनाओं के साथ!

पत्र



प्रतीकार्थ से व्यंजना

● 'आजकल' का अक्टूबर 2014 अंक दो कारणों से महत्वपूर्ण हो गया है। कृश्न चंदर जन्म शताब्दी पर आपने इसे विशेषांक बना दिया है, आगे-पीछे के पृष्ठों पर गांधी जी का स्पर्श है। 'बापू ने कहा था' व 'स्वच्छता पर गांधी जी के विचार' में उनके कथन दे दिए। राजीव रंजन गिरि संपादित गांधीजी की पुस्तक 'पुरुषार्थ, त्याग और स्वराज' की रेखा सिन्हा कृत समीक्षा दे दी लेकिन इन सबसे महत्त्वपूर्ण कृतार्थ सरदाना का लेख 'फिल्म गांधी से अमर हो गए रिचर्ड एटेनबरो' है। फिल्म 'गांधी' एटेनबरो व बेन किंग्सले संबंधित पूरी संघर्ष गाथा दुर्लभ है। फिल्म गांधी से बढ़कर गांधी का स्मरण और उन्हें श्रद्धांजलि और क्या हो सकती है। सुरेश सलिल, जानकीप्रसाद शर्मा, रतन सिंह, शमीम फ़ैज़ी, प्रदीप पंत, गोपाल गुप्ता, मुहम्मद ख़लील के मूल्यांकनपरक आलेख हैं, कुलदीप तलवार व नरेश के आत्मीय संस्मरण हैं, मनोज मोहन की परिचर्चा में नरेंद्र मोहन, परवेज़ अहमद, प्रताप सहगल, प्रो. सादिक़ के आकलनपरक विचार हैं, कृश्न चंदर की राखी-बंध बहन अख़्तर जमाल का सुदीर्घ संस्मरणात्मक विचार हैं, कृश्न चंदर के सगे भाई महेंद्रनाथ और सगी बहन सरला की स्मरणांजलियां हैं। साक्षात्कार की कमी को उनकी पत्नी सलमा सिद्दीक़ी ने पूरा किया है, जिसे असलम परवेज़ ने अंजाम दिया है। इन सबसे ऊपर इस अंक में कृश्न चंदर की पहली कहानी 'झेलम में नाव पर' है जिसमें खूबसूरत और बदसूरत, दोनों सौंदर्य का आस्वादन है। दुःखों से बुनी हुई कृश्न चंदर की एक और कहानी 'महालक्ष्मी का पुल' इस अंक का अतिरिक्त आकर्षण है जिसमें पांच स्त्रियों के वेदनामय जीवन को पांच साड़ियों के प्रतीकार्थ से व्यंजना दी गई है।

–हितेश व्यास, कोटा, (राजस्थान)

युवा अब कृश्न चंदर को समझ रहे हैं

● अक्टूबर अंक में कृश्न चंदर के बारे में बहुत सारी नई-नई जानकारी मिली। युवा लेखक अब कृश्न चंदर के बारे में जान रहे हैं और उनको समझ रहे हैं। कृश्न चंदर को कथा-क्षेत्र में वही स्थान प्राप्त है जो अली सरदार जाफ़री को काव्य-क्षेत्र में। फ़िराक़ गोरखपुरी की ये पंक्तियां कृश्न चंदर के संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व को स्पष्ट करती हैं। वर्ष 2014 कथाकार कृश्न चंदर का जन्म शताब्दी वर्ष है। प्रेमचंद के बाद उर्दू कहानी में मंटो, राजेंद्र सिंह बेदी के साथ-साथ कृश्न चंदर का भी प्रमुख नाम आता है। कृश्न जी खूब कमाते थे और खूब खर्च करते थे। वे अपने मित्रों में रुपया इस तरह बांटते थे जिस तरह किसी तीर्थ स्थान पर कोई अंधा रेवड़ियां बांट रहा हो। 'अन्नदाता', 'पेशावर एक्सप्रेस', 'जामुन का पेड़', 'गड्ढा', 'पंद्रह फुट लंबी दुनिया', 'दानी', 'झील से पहले, झील के बाद', 'पूरे चांद की रात', 'पीलिया', 'आधे घंटे का खुदा' जैसी यादगार कहानियों और 'तूफ़ान की कलियां', 'एक वायलिन समंदर', 'एक गंधे की आत्मकथा', 'दादर पुल के बच्चे' जैसे सार्वकालिक उपन्यासों के रचनाकार कृश्न चंदर का उपयुक्त कथन उसी कथा-परंपरा का वाहक है, जिसके बीज प्रेमचंद ने बोए थे।

–अशोक कुमार ठाकुर, मालीटोला, दरभंगा (बिहार)

बच्चों पर केंद्रित

● 'आजकल' का नवंबर 2014 अंक देखा, पढ़ा व सार्थक किया। बच्चों पर केंद्रित इस अंक के निबंध 'बच्चा एक अलग इकाई है'–क्षमा शर्मा, 'बाल मन की आवाज़' मधु पंत–'ऐसा हो बच्चों का साहित्य'–अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन', 'आंगन की गौरेया'–कामना सिंह, 'सोनचिरैया खुशियों की'–यश मालवीय, 'बहादुर लड़का'–सुरजीत, 'बाल साहित्य बच्चों को दोस्त लगे, शिक्षक नहीं'–साक्षात्कार, कविताएं व ग़ज़लें अच्छी लगीं।

–नंद किशोर तिवारी, वाराणसी(उ.प्र.)

बच्चों पर समुचित ध्यान

● बाल साहित्य पर विशेष सामग्री से समृद्ध नवंबर अंक पढ़ा। बालक व बाल साहित्य पर तरह-तरह से विचार करते लेख, कहानियां व कविताएं भी अंक के स्तरानुकूल हैं। वस्तुतः हम बच्चों पर उतना ध्यान नहीं दे पा रहे हैं जितना दिया जाना चाहिए। समय की मांग है कि बच्चों व बाल साहित्य पर समुचित ध्यान दिया जाए अन्यथा इतिहास हमें कभी क्षमा नहीं करेगा।

–सार्थ, धरमंगदपुर, कानपुर नगर (उ.प्र.)

गीत के जीवंत बिंब

● गीत के प्रति मेरा अनुराग और प्रगाढ़ हो जाता है, जब कहीं कोई स्तरीय गीत पढ़ने को मिल जाता है। नवंबर 2014 अंक में यश मालवीय ने अच्छा प्रभाव छोड़ा है। इस गीत में प्रयुक्त बिंब अछूते हैं। यथा दादी का भिनसारे में हरसिंगार चुनना/चुटिया वाली दीदी का क्यारी में पानी देना/काका जी का गुब्बारे में पतंग बांधना/मुनिया का स्वेटर पहने ही फव्वारे में नहा लेना; ये गीत के जीवंत बिंब हैं–इस कठिन और उदास समय में चेहरे पर बरबस उजास भरी सस्मित रेखाएं खींच देते हैं।

–उदय शंकर सिंह 'उदय', शहबाज़पुर (बिहार)

अभावग्रस्त बाल साहित्य का बाज़ार

● नवंबर 2014 अंक में बाल साहित्य पर विशेष रचनाएं पढ़ने को मिलीं। बाल साहित्य के अतीत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भों में कई उपलब्धियों और कई कमियों के प्रति आगाह करते हुए आलेखों में बाल साहित्य के निर्माण और प्रकाशन की अर्थवत्ता को भी प्रकट किया गया है।

आज वैज्ञानिक संसाधनों के प्रति अधिक रुझान होने के कारण बाल साहित्य की क्या आवश्यकता है? व्यवसाय की दृष्टि से किसी भी प्रकार के साहित्य की रचना, प्रकाशन और बिक्री के मार्ग तो सुगम हैं, पर बच्चों की मानसिकता, उनकी शिक्षा-दीक्षा और रुचि के अनुसार बाल साहित्य का बाज़ार अभावग्रस्त है अथवा संकटापन्न है। उपर्युक्त तमाम उलझनों को तार्किक ढंग से इस अंक में सुलझाया गया है। हरीश निगम तथा शिवाकांत मिश्र 'विद्रोही' के गीत प्रभावी लगे। रमेश तैलंग का साक्षात्कार विशेष है।

–सुरेंद्र वाजपेयी, वाराणसी

शिशुगीतों पर सुंदर विवरण

● नवंबर 2014 अंक में क्षमा शर्मा ने अपने लेख 'बच्चा एक अलग इकाई है' में भारत की भौगोलिक व सांस्कृतिक भिन्नता तथा आज के बदले हुए वैश्विक परिवेश को दर्शाने वाली पुस्तकों को अधिक से अधिक सरकारी तथा प्राइवेट पुस्तकालयों तक पहुंचाने पर ज़ोर दिया है। अन्य लेखों में बच्चों और बड़ों के बीच के अंतर्द्वंद्वों की पड़ताल की गई है तथा बताया गया है कि किस प्रकार बड़ों द्वारा कल्पनाशक्ति और सृजनशीलता को छीना जा रहा है। 'आंगन की गौरया' कहानी में प्रोफेसर साहब के द्वारा बच्चों व बड़ों द्वारा प्रकृति से जुदा हो जाने के दर्द को उकेरा गया है। ललित मोहन राठौर की लघुकथाएं साधारण हैं। हरीश निगम के चारों गीतों में प्रकृति के ही विभिन्न रूपों का वर्णन है तथा पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का भी संकेत है। उषा यादव के लेख में प्रसिद्ध शिशु-गीतों पर सुंदर विवरण प्रस्तुत किया गया है। वरिष्ठ लेखक तथा पत्रकार योगेंद्र कुमार लल्ला और कवि रमेश तैलंग से साक्षात्कार सराहनीय है।

–रजनीश मंगा, फरीदाबाद (हरियाणा)

स्तरीय सामग्री

● नवंबर 2014 अंक का न सिर्फ़ आवरण आकर्षक है बल्कि इसमें प्रस्तुत सारी सामग्री स्तरीय एवं पठनीय है। क्षमा शर्मा तथा श्रीनाथ सहाय के लेख इस अंक की विशिष्ट उपलब्धि हैं। विनायक ने अपने लेख में प्रकारांतर से यह कहने का प्रयास किया है कि प्रकृति एवं पर्यावरण को लेकर सिर्फ उन्होंने ही बाल/किशोर उपन्यास लिखे हैं। विनम्रता से बताना चाहूंगा कि प्रकृति, पर्यावरण एवं प्रदूषण को लेकर मेरा बाल उपन्यास 'बीनू का सपना' वर्ष 2014 में साहित्य भंडार, इलाहाबाद से छपा था। प्रेम जनमेजय ने बाल साहित्य में हास्य/व्यंग्य के अभाव की बात अपने लेख में की है। इस क्रम में बताना चाहूंगा कि स्वयं प्रकाशन विभाग से ही वर्ष 2012 में मेरी बारह हास्य/व्यंग्य बाल कहानियों का संकलन 'सब बुद्धू हैं' शीर्षक से छप चुका है। कहने का आशय यह है कि चीज़ें हर प्रकार की उपलब्ध हैं, आवश्यकता उनको जानने और पढ़ने की है। योगेंद्र कुमार लल्ला से शकुंतला कालरा की बातचीत तथा रमेश तैलंग से श्याम सुशील की बातचीत पसंद आई। इस अंक की सभी कहानियां अच्छी हैं। हरीश निगम के गीत भी अच्छे लगे।

–आशिलेश श्रीवास्तव 'चमन', लखनऊ (उ.प्र.)

परामर्श काफ़ी मूल्यवान

● 'आजकल' का नवंबर 2014 का अंक एक संग्रहणीय अंक है। चूंकि बाल साहित्य आगामी समृद्ध साहित्य की बुनियाद हुआ करती है; इस पर अध्ययन-मनन होना आवश्यक है। मैं स्वयं बच्चों के लिए लिखता आ रहा हूं जिसके कारण इस विषय का साहित्य जहां कहीं उपलब्ध होता है, उसे संग्रह कर लेता हूं। योगेंद्र दत्त शर्मा की रचना 'बाल पत्रिकाओं का वर्तमान परिदृश्य' काफी समृद्ध रचना है। बाल पत्रिकाओं के बारे में 'विगत' वर्तमान और 'आगत' के संदर्भ पर उन्होंने पाठकों को अच्छी जानकारी दी है।

मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने किस प्रकार प्रिंट मीडिया को अधमरा कर दिया है। पढ़ने वाले आज भी पढ़ते हैं, लेकिन अनुपात बहुत घट गया है। पिछले दिनों कोलकाता के कॉलेज स्ट्रीट (जो भारत के बड़े प्रकाशन बाज़ारों में एक है) में एक बाल साहित्य के प्रकाशक से बातें हो रही थीं, उन्होंने बताया 'शुक्रवार' (बांग्ला में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ बाल पत्रिका) आज भी प्रकाशित हो रही है लेकिन उसका सर्कुलेशन दस वर्ष पहले एक हाउसिंग कॉम्पलेक्स में जहां साठ प्रतियां होती थीं, वहां अब मुश्किल से दस-बारह प्रतियां ही हो पाती हैं।

बाल कविताओं के शुद्धिकरण के लिए परामर्श काफी मूल्यवान हैं।

–तपेश भौमिक, कुचबिहार (पश्चिम बंगाल)

गहरे वैचारिक विमर्श की जरूरत

● साहित्य पर विशेष सामग्री संग्रहणीय है। क्षमा शर्मा, उषा यादव, विनायक, श्रीनाथ सहाय का लेख ग़ारतलब है। कामना सिंह की कहानी संवेदनशीलता के साथ नई दृष्टिबोध को भी उकेरती है।

बावजूद जहां हम एक ओर बच्चों की मानसिकता और चारित्रिक विकास के लिए ढेरों साहित्यिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक उपायों/स्रोतों को नियोजित कर रहे होते हैं, वहीं भारतीय मां की स्वतंत्र मानसिकता से हम चौंक पड़ते हैं। यह तथ्य दैनिक 'हिंदुस्तान' 4 नवंबर द्वारा ज्ञात हुई कि 'भारतीय मांएं बच्चों के बिना घूमना चाहती हैं।' यानी इन मांओं को लगता है कि बच्चे साथ होते हैं तो उन्हें पति के साथ समय बिताने का मौका नहीं मिलता है। यह दावा ट्रेवल बुकिंग वेबसाइट की ओर से की गई है। दूसरी ओर एक अन्य वेबसाइट की ओर से किए गए इस सर्वे में एक हज़ार महिलाओं से बातचीत की गई थी। ये महिलाएं कर्नाटक, महाराष्ट्र और दिल्ली की रहने वाली थीं। सर्वे में शामिल 63 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे छुट्टियों में सिर्फ़ पति के साथ घूमना चाहती हैं। चौंकाने वाले तथ्य यह भी हैं कि गृहिणी व नौकरीपेशा महिलाओं की राय एक जैसी दिखी। मां की यह नई छवि गहरे संकट को व्यक्त करती है क्योंकि ये मांएं कदापि यह नहीं सोच पा रही हैं कि इनके इस निर्णय या ऐसी प्रवृत्तियों से इनके मासूम बच्चों के मानस पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? निश्चय ही बच्चों के विरुद्ध स्त्री (मां) के इस एकपक्षीय सोच को हाशिए पर नहीं रखा जा सकता है बल्कि इनकी इस मानसिकता के विरुद्ध गहरे वैचारिक विमर्श की जरूरत है ताकि वक्त रहते हम इस संकट से संभल सकें।

–अरुण अभिषेक, विवेकानंद कॉलोनी (पूर्णिया)

अपने-आप में अनूठा

● बाल साहित्य पर विशेष नज़र रखते हुए 'आजकल' पत्रिका का नवंबर अंक अपने-आप में बेजोड़ है। बच्चों के विकास के लिए भारतीय हिंदी पत्रकारिता ने विशिष्ट स्थान बनाया है। मार्मिकता के साथ व्यावहारिक बोध व दायित्व में लेखकों के कलम ने सटीक दिशानिर्देश दिया है। चक्रधर नलिन द्वारा 'स्वर्ग सहोदर' पर लेख एक दस्तावेज़ है। बच्चों के सिनेमा पर शशांक दुबे द्वारा अच्छी जानकारी मिली। रमेश तैलंग से बातचीत में रचना की भाषा पर चर्चा अच्छी लगी। शिवाकांत मिश्र 'विद्रोही' के नवगीत से परिचय हुआ। कामना सिंह की 'आंगन की गौरैया' कहानी रोचक है। गुरजीत की रचना 'बहादुर लड़का' मन भायी। हरीश निगम को नवगीतों के लिए बधाई!

–अवधेश, सीतापुर (उ.प्र.)

रुक गया प्रवासी

इस वर्ष गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस लौटे एक सदी बीत रही है। दक्षिण अफ्रीका में संघर्ष कर रहे प्रवासी भारतीयों की अगुआई करते हुए गांधीजी ने आंदोलन और सत्याग्रह का पथ प्रशस्त किया था। उसी पर आगे बढ़ते हुए भारत की जनता ने गुलामी की ज़ंजीरें तोड़कर आज़ादी पाई। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत की आज़ादी की लड़ाई का एक मोर्चा दक्षिण अफ्रीका की बर्बर रंगभेदवादी सरकार के विरुद्ध संघर्ष में खोला था गांधीजी ने। युवा बैरिस्टर मोहनदास गांधी 23 मई 1893 को दक्षिण अफ्रीका पहुंचे—भारतीय व्यापारी दादा अब्दुल्ला के मामले की पैरवी करने। मामला सुलझ जाने के बाद उन्होंने भारत वापसी का मन बना लिया लेकिन इतिहास को उनके नेतृत्व में एक नया मोड़ लेना था।

इसी दौरान नेटाल में भारतवंशियों को मताधिकार से वंचित करने वाला कानून बनाने की तैयारियां हो रही थीं। भारतवंशियों द्वारा गांधीजी को दी जा रही विदाई समारोह में यह बात उठी—चिंताएं उभरीं।

और रुक गया प्रवासी—दक्षिण अफ्रीका के भारतवंशियों को अन्याय-अत्याचार के ख़िलाफ़ अहिंसक संघर्ष का पाठ पढ़ाने।

मोहनदास ने भारत वापसी का फ़ैसला टाल दिया। उन्होंने नई राह चुनी—तब कौन जानता था कि मोहनदास जिस राह पर चलने का मन बना चुके थे, वह उन्हें महात्मा बना देगी—दक्षिण अफ्रीका का ही नहीं, मात्र भारत का भी नहीं—जन-जन का महात्मा... मानवता की उम्मीदों का महात्मा। इसी संदर्भ में यहां प्रस्तुत है एक मार्मिक और प्रेरक प्रसंग—

... मुकदमे का काम समाप्त होने के बावजूद उन्होंने प्रिटोरिया के अपने दोस्तों से ख़ामोशी से विदा ली और भारत के लिए चल देने के इरादे से डरबन लौट आए। हालांकि इस समय तक अब्दुल्ला सेठ भी गांधी का महत्व बखूबी समझ चुका था और उनका सम्मान करता था। पर उसने भी गांधी से दक्षिण अफ्रीका में ही रुक जाने के लिए नहीं कहा। उसने गांधी के लिए एक शानदार विदाई पार्टी का आयोजन किया। डरबन के निकट सागर किनारे एक सुंदर रिसार्ट सेडनहम चुना गया। सेडनहम में मिलन गोष्ठी रखी गई। शहर के सभी प्रमुख भारतीयों को वहां पूरा दिन बिताने का आमंत्रण दिया गया।

फ़ुरसत के क्षणों में अख़बार देखते हुए गांधी की नज़र एक समाचार पर टिक गई जिसमें लिखा था कि एक नया कानून लागू होने जा रहा है जिसके बाद नेटाल में रहने वाले सभी भारतीय जो वर्तमान कानूनों के तहत मतदान के अधिकारी थे, इससे वंचित कर दिए जाएंगे। उन्होंने दादा अब्दुल्ला से पूछा कि क्या उन्हें जल्दी ही पारित होने वाले नए कानून के बारे में कुछ पता



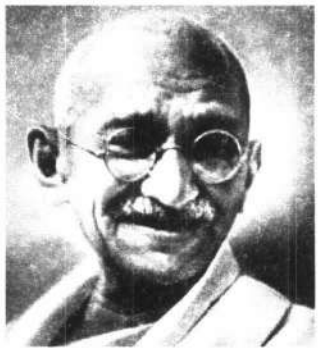
जिन दिनों डरबन में भारतीय समुदाय के लोग घिट्टो एक्ट के विरुद्ध उग्र सत्याग्रह आंदोलन चला रहे थे उस समय महात्मा गांधी ने 28 जून, 1946 को नई दिल्ली की प्रार्थना सभा में गांधीजी के नेटाल और ट्रांसवाल में बिताए गए समय को भावपूर्ण शब्दों में याद करते हुए कहा कि उनका जन्म भले ही भारत में हुआ था लेकिन स्वरूप मिला दक्षिण अफ्रीका में जहां उन्होंने अपने जीवन के सबसे अच्छे बीस वर्ष बिताए थे। यह कहकर गांधीजी ने एक बार फिर यह साफ़ कर दिया कि वह उस उपमहाद्वीप में अपने देशवासियों की सेवा में बिताए गए समय को कितना महत्वपूर्ण समझते थे। आज विश्व इस बात को स्वीकार करता है कि गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में जो कुछ सीखा, आंदोलन की जिस राह पर वह चले, उसी में गांधीवादी विचारधारा की संपूर्णता और आगे चलकर उनके महानता की चोटी पर पहुंचने की कुंजी मौजूद है।

था? इस प्रश्न ने सेठ का ऑरेंज फ्री स्टेट की दुखद स्मृतियों को जगा दिया। उन्हें याद था कि वहां क्या हुआ था और कैसे भारतीयों का काम-धंधा बौपट हो गया था? उन्होंने निराश भाव से अपनी तथा अपने मित्रों की मजबूरी का ज़िक्र किया और बताया कि किस तरह अनपढ़ होने के कारण वे लोग पूरी तरह यूरोपीय वकीलों पर ही निर्भर करते हैं। इस उत्तर के बाद गांधी जल्दी-जल्दी कुछ सोचने लगे। उन्होंने भारत लौटने के लिए अपना सामान बांध लिया था। वह अपने मन की सारी बात तो नहीं कह सकते थे, फिर भी उन्होंने पूरी स्थिति को जिस तरह संक्षेप में बताया उससे सब परेशान हो गए। उन्होंने कहा—"अगर यह बिल पास हो गया तो इससे मुश्किलें बहुत बढ़ जाएंगी। यह हमारे ताबूत की पहली कील है। यह तो हमारे स्वाभिमान पर सीधा हमला है।"

गांधी के शब्दों से परेशान होकर अब्दुल्ला सेठ ने बताया कि कुछ वर्ष पहले क्या हुआ था? पूरे झगड़े की जड़ में दो शक्तिशाली यूरोपियनों की आपसी राजनीतिक होड़ थी। उनमें से एक हैरी एस्कम्ब नेटाल का प्रसिद्ध वकील था। नेटाल के सबसे धनवान भारतीय व्यापारी उसके मुवक्किल थे। उसने भारतीयों को उनके मताधिकार के बारे में बताया था। उसके कहने पर कुछ भारतीयों ने मत डालने के अधिकारी होने के बावजूद कभी रुचि नहीं दिखाई थी, अब अपने नाम मतदाताओं के रूपों में पंजीकृत करवा लिए और चुनाव में हैरी एस्कम्ब का समर्थन किया। भारतीय प्रवासियों द्वारा हैरी का समर्थन करने से उसके विरोधी तथा प्रवासी एशियाइयों का विरोध करने वाले अन्य लोग चौकन्ने हो गए। इस तरह प्रबल व्यापारिक ईर्ष्या का भाव राजनीतिक होड़ के साथ मिल गया। भारतीयों का मताधिकार छीनने की

दादाभाई का आशीर्वाद

गांधीजी जानते थे कि दादाभाई नौरोजी दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले अपने देशवासियों के कल्याण में कितनी रुचि लेते हैं। इस समय उनसे मदद मांगने का लाभ स्पष्ट था। हाउस आफ कॉमन्स के एक सदस्य के नाते वह काफी मददगार हो सकते थे। गांधी एक के बाद दूसरी याचिका तैयार करने में व्यस्त थे लेकिन उन्होंने दादाभाई नौरोजी से संपर्क साधने में ज़रा भी समय नहीं गंवाया। 5 जुलाई, 1894 को गांधी द्वारा उन्हें लिखा गया पत्र विशेष था। पत्र के अंत में उन्होंने व्यक्तिगत संदर्भ उठाए थे–



... मैं अनुभवहीन और जवान हूं इसलिए मुझसे ग़लतियां हो सकती हैं। मैंने जो ज़िम्मेदारी ली है वह मेरी क्षमताओं की तुलना में काफ़ी बड़ी है। यहां मैं साफ़ करना चाहूंगा कि यह काम बिना कोई पैसा लिए कर रहा हूं। इसलिए आप समझ सकते हैं कि अपनी क्षमता से अधिक बड़ा काम मैंने यहां रहने वाले भारतीयों के पैसे से खुद को अमीर बनाने के लिए नहीं लिया है। यहां इस प्रश्न को उठाने वाला व्यक्ति अकेला मैं ही हूं। इसलिए अगर आप मुझे एक पिता द्वारा पुत्र की तरह निर्देश दें, मेरा मार्गदर्शन करें तो मैं आपका आभार मानूंगा। ...



अपनी विनम्रता और आत्मचेतना के लिए उल्लेखनीय इस पत्र में गांधी ने इस बात को स्पष्ट कहा था कि उन्होंने व्यक्तिगत लाभ की इच्छा से सार्वजनिक कार्य हाथ में नहीं लिया है। यह एक ईमानदार व्यक्ति की नैतिक वचनबद्धता थी जो इसको पूरा करने के लिए हर तरह से तैयार था।

कोशिशें पूरे ज़ोर-शोर से होने लगीं। मगर ये बुरी कोशिशें अब तक सफल नहीं हुई थीं क्योंकि नेटाल एक ब्रिटिश उपनिवेश था और मनमानी नहीं कर सकता था। एशियाइयों में मताधिकार के कुछ मामले सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचे लेकिन अदालती निर्णय एशियाइयों के पक्ष में हुआ। इस तरह एशियाइयों से जले बैठे गोरों के मन में उनका विरोध और भी ज़ोर पकड़ गया।

जुलाई 1893 में वहां उत्तरदायी सरकार के बनने के बाद भारत विरोधी लाबी और भी मज़बूत हो गई। कुछ ही सप्ताह बाद हुए चुनावों में यह तनाव और भी बढ़ गया। ज्यादातर यूरोपीय भारत से मज़दूरों को बुलाने के विरुद्ध थे और अनुबंध खत्म करके मुक्त हुए भारतीयों के स्थायी रूप से वहां बस जाने के तो एक दम ही ख़िलाफ़ थे। गन्ना बगानों के मालिकों की इसलिए सदा आलोचना की जाती थी कि वे सरकारी खर्च पर भारत से गिरमिटियों के बुलाने पर ज़ोर देते रहते थे। इस पर गन्ना बगान मालिकों ने चालाकी का सहारा लेकर गोरों के विरोध का रुख़ भारतीय व्यापारियों की तरफ़ मोड़ दिया। गोरे भारत से वहां आए लोगों को नागरिकता के पूरे अधिकार दिए जाने के घोर विरोधी थे।

फारवर्ड पार्टी चुनाव में विजय के बाद चुनाव अभियान के दौरान किए गए अपने वायदे पूरे करने को उत्सुक थी। इस दिशा में पहले कदम के रूप में सर जान राबिन्सन के मंत्रिमंडल ने एक सरकारी शिष्टमंडल भारत भेजा। उसका एकमात्र उद्देश्य यह पता लगाना था कि गिरमिटियों को दक्षिण अफ्रीका भेजने के नियमों में क्या कुछ परिवर्तन किए जा सकते हैं? वैसे असली मकसद यह था कि अनुबंध-मुक्त मज़दूरों को आज़ाद लोगों के रूप में उपनिवेश में किसी भी तरह बसने न दिया जाए। इस शिष्टमंडल ने अपना काम सफलता से पूरा किया। इसने अनुबंध खत्म होने के बाद उपनिवेश में बसने का इरादा रखने वाले मज़दूरों पर रिहायशी टैक्स लगाने की ज़मीन तैयार कर ली।

नई सरकार के सामने भारतीय समुदाय से जुड़ा दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा मताधिकार का था। निटाल विधान परिषद के पहले ही अधिवेशन में पेश एक निजी बिल में एशियाई लोगों से मताधिकार छीनने की मांग की गई थी। अधिवेशन बहुत थोड़े समय के लिए बुलाया गया था। इस वजह से यह बिल पेश नहीं किया जा सका। अगले अधिवेशन में सरकार ने खुद मताधिकार संशोधन बिल पेश किया जिसके तहत एशियाइयों का मताधिकार छीनने की बात थी। सिर्फ वही लोग इसके दायरे से बाहर रहने वाले थे जिनके नाम पहले से इस मतदाता सूची में थे। सेडनहम में गांधी को विदाई देने जमा हुए भारतीयों के बीच इसी बारे में बातें हुई थीं।

दादा अब्दुल्ला ने माना कि उसने तथा उसके मित्रों ने मताधिकार की बात को कभी महत्व नहीं दिया। इसे अपनी ग़लती मानकर उसने गांधी से पूछा कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। एक मेहमान ने, जो बहुत ध्यान से सारी बातें सुन रहा था, अचानक बीच में ही गांधी से कहा–"मैं आपको बताऊं कि क्या करना चाहिए? आप अपना वापसी टिकट रद्द कर दें, एक महीना और यहां रुकें फिर आप जैसा कहेंगे हम इस मुद्दे पर संघर्ष करेंगे।" अब तो बाकी सब भी एक स्वर में कहने लगे "जरूर, जरूर। अब्दुल्ला सेठ, आप गांधी भाई को रोक लीजिए।" सेठ बहुत चतुर और दूरदर्शी था। वह सारी ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर नहीं उठाना चाहता था। उसने कहा "मैं अकेला तो इन्हें नहीं रोक सकता लेकिन आप लोगों का भी गांधी पर मेरे जितना ही अधिकार है। हम सभी को मिलकर इनसे यहां रुकने के लिए कहना चाहिए। आप लोगों को यह याद रखना चाहिए कि गांधी एक बैरिस्टर हैं। इनकी फ़ीस का क्या इंतज़ाम होगा?"

इस बीच गांधी चुपचाप लोगों की बातें सुनते हुए कुछ सोच रहे थे। यदि वह ज़िम्मेदारी संभालने को तैयार हों, तो यहां से उसकी आवाज़ उठ रही

पृष्ठ 16 पर जारी

हिंदी साहित्य में वसंत

ऋतु चक्र के अनुसार शिशिर ऋतु के बाद चैत्र और वैशाख दोनों ही महीने वसंत ऋतु के माने गए हैं। इस महीने को कहीं 'ऋतुराज' नाम से, तो कहीं 'मधुमास' से भी संबोधित किया जाता रहा है। इस महीने में आकाश से कोहरा कम हो जाता है, ठंड कम पड़ने लगती है, आसमान साफ़ हो जाता है, नदी, सरोवर, तालाब का जल अपनी भौतिक छवि से सबके मन को आकर्षित करते हैं, बता रहे हैं **पराक्रम सिंह**

प्रकृति और मानव का आदि का संबंध रहा है। प्रारंभ में सभी आवश्यकताओं के हेतु उसे प्रकृति पर ही निर्भर रहना पड़ता था और उसी से प्रेरणा ग्रहण करके उसमें कल्पना एवं विचार की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। प्रकृति के परिवर्तनशील बहुवर्णी स्वरूप को देखकर ही उसके मन में उद्‌भावनाएं जागृत हुईं। कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से आसाम तक विविधता में एकता का दर्शन कराने वाला भारत उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक और भौगोलिक दृष्टि किसी न किसी रूप में एक रही है। प्राकृतिक अवस्था के अनुसार दो-दो महीने की छः ऋतुएं वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर जैसी ऋतुएं आकर प्रकृति को शोभायमान करती रहती हैं। जीवनधारियों को एक नए उत्साह के साथ कार्य करते हुए पृथ्वी को मनोहारिणी छटा से अलंकृत कर देती है। ऋतुओं को लेकर हिंदी साहित्य तथा संस्कृत साहित्य के कवि मनीषी अपनी लेखनी के माध्यम से बड़ा ही मनोहारी दृश्य-चित्र उकेरने का प्रयास करते आ रहे हैं। शब्दकोष में इस वसंत को 'मधु वसंत चैत्रे चमधुः पुष्प रसे तथा' से संबोधित किया गया वहीं दूसरी तरफ़ गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने—"बृहस्साम तथा सामनां गायत्री छंद सामहम। मासानां मार्गशीर्षोऽमृतूनां कुसुमाकरः।।" इसे महत्त्वपूर्ण बताया है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ में उपनयन (जनेऊ) जैसे संस्कार के लिए इस ऋतु की महत्ता को बताते हुए इसका वर्णन इस प्रकार है—वसंते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मेराजन्यम्। शरदि वैष्यम् सर्वकालमेको। ब्राह्मज का वसंत में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में वैष्य का शरद ऋतु में यज्ञोपवित करना चाहिए अथवा सर्व ऋतु में हो सकता है।

ऋतु चक्र के अनुसार शिशिर ऋतु के बाद चैत्र और वैशाख दोनों ही महीने वसंत ऋतु के माने गए हैं। इस महीने को 'ऋतुराज' नाम से, तो कहीं 'मधुमास' से भी संबोधित किया जाता रहा है। इस महीने में आकाश से कुहरा कम हो जाता है, ठंड कम पड़ने लगती है, आसमान निर्मल स्वच्छ हो जाता है, नदी, सरोवर, तालाब का जल अपनी भौतिक छवि से सबके मन को आकर्षित करते हैं। इसी महीने में पेड़ों में नई-नई कोपलें फूटती हैं, टेसू वन में अपनी लालिमा से सुशोभित हो जाता है। महुए की गंध से वन महक जाते हैं। रसों, जौ, आलू, गेहूं, चना, मटर, तीसी की फ़सल तैयार होने को होते हैं। वसंत पंचमी के दिन विद्या की देवी सरस्वती का पूजन, होली और रामनवमी, वैशाखी जैसे प्रमुख त्यौहार की प्रतिक्षा होने लगती है। इसी महीने में भौंरे, मधुमक्खी, पराग का आनंद लेते हैं तथा मधुमक्खी शहद इकट्ठा करने का काम तेज़ी से करती हे। कोयल और पपीहा अमराइयों से मस्त मधुर गान करते हैं। मधुक्त वसंत के इस सुरम्य प्राकृतिक सुषमा और संपन्न वातावरण को कवियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से उसके विविध रूपों में स्थापित करने का प्रयास किया है। 'आदिकाल के कोकिल' के उपनाम से विख्यात मैथिली कवि विद्यापति ने वसंत ऋतु का मनोहर चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

नव वृंदवन नव-नव तरूगण, नव-नव विकसित फूल।
नवल वसंत नवल मलयानिल, मातल नव अलिकूल।।
विहरई नवल किशोर।

इसके द्वारा विद्यापति ने मनोहारी वसंत के माध्यम से जीवन के कुछ सुखद क्षण को बताया वहीं दूसरी तरफ़ फूल के आगमन के साथ वृक्षों में नव किसलय सुगंधित वायु से वसंत का आगमन बताया है। निर्गुण भक्तिधारा के कवि कबीरदास ने अपनी 'साखी' के माध्यम से इसका वर्णन करते हुए कहा है—रितु वसंत जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात/ तांत नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात।।

'प्रेम के पीर' नाम से प्रसिद्ध 'पद्मावत' जैसे प्रेम खंडकाव्य की रचना करने वाले सूफ़ीधारा के कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपने नागमति वियोग खंड के 'बारहमासा' में इस वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कहा है—

चैत वसंता होइ धमारी। मांहि लेखे संसार उजारी।।
पंचम विरह पंच सर मारे रकत रोइ सगरौं बन ढारे।।
बूड़ि उठे सब तरवरि पाता। भीति मजीठ टेसु बन राता।।
बौरे आम फरै अब लागैं। अबहूं आउ घर, कंत सभागे।।
सहस भाव फूली वनसपति। मधुकर घूमहूं संवरि मालती।।
मो कहं फूल भये सब कांटे। दिष्टि परत जस लागहि चांटे।।
फिर जोबन भए नारंग साखा। सुआ विरह अब जाइ न राखा।।

जायसी ने पद्मावती वियोगखंड में भी इस ऋतु का वर्णन बड़े ही सुंदर ढंग से किया है—धाय सिंध वरु खातेउ मारी। कीतसि रहित असि असि बारी/ जोवन सुनेउ की नवल वसंतू। तेहि वन परेउ हस्ति ममंतू।।

जहां वसंत सबके जीवन में नई उल्लास लाने का कार्य करता है वहीं रानी नागमति के वियोग को बढ़ाकर प्रकृति के इस मनोहर दृश्य को जिसमें आम के बौर, टेसू फूल आदि को रानी द्वारा काटा बताकर नकारा जा रहा है।

इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास ने नारद मोह प्रसंग में इस ऋतु का वर्णन करते हुए कहा है—

तेहि आस्रमहिं मदन जब गयऊ। निज माया वसंत निरमऊ।।
कुसुमित विविध विटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा।।

तुलसीदास ने विभिन्न पुष्पों, कोयल और भौंरे के माध्यम से आश्रम का बड़ा ही सुंदर, मनोहर दृश्य प्रस्तुत किया है। रीतिकाल के कवियों ने भी वसंत को अपनी दृष्टि से वर्णन करने का प्रयास किया है। इस संबंध में सेनापति जी ने ऋतुओं का बड़ा ही सजीव वर्णन करते हुए वसंत के बारे में कहा है—

बरन-बरन तरु फूले उपवन वन/सोई चतुरंग संगदल लहियतु है।
बंदी जिम बोलत विरद वीर कोकिल हैं
गुंजत मधुप गान-गुन महियतु है।।
आवे-आस-पास पहुपन की सुवास सोई
सोने के सुगंध माझ सेन रहियतु है।
सोभा को समाज सेनापति सुख साज आजु
आवत वसंत रितुराज कहियतु है।

उपर्युक्त पंक्ति के माध्यम से ऋतुराज वसंत के आगमन पर चारों ओर

सुंदर पुष्प का खिल जाना, भौंरे का गान, कोयल को बोलने से इसका आगमन होता है जो सभी प्राणी के लिए सुख और स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारी ने वसंत को जीवन आशा की उम्मीद से इसका वर्णन करते हुए कहा है–

इही आस अटक्यौ रहत अलि गुलाब के मूल
है है फिर वसंत ऋतु इन डारन में फूल

इसी वसंत को रीतिमुक्त काव्य के प्रमुख कवि घनानंद ने बड़े ही सुंदर ढंग से लिखा है–

घुमड़ि पराग लता तस भोये, मधुरित सौरभ सौज संभोये।
बन वसंत बरनत मन फूल्यौ। लता-लता झूलनि संग झल्यौ।

आलम ने अपनी रचना 'आलम केलि' में विरह वर्णन शीर्षक में इस ऋतु का वर्णन करते हुए कहा है–

जार्‌यो मनोज सिव तीजै नैन ज्वाला कारि
बहे जोर जुट आयो तेहि ज्वाला जरी है
विरह अपार ताकी पीर को न पार पायी
पीय के उपाय बिनु पढ़े पार परी है।
एते पर 'आलम' वसंत यह बैरी भयो,
बिस से बयारि लागै ते ही बिस भरी है।
कीर की कलह कलमल्यो मनु कोकिल हूं,
कुहकि कुहकि कान कलकान करी है।

प्रस्तुत पंक्ति के माध्यम से आलम मानो यह बता देना चाहते हैं कि जो ऋतु इतना अच्छा होता है वह विरह की मनोदशा में शत्रु हो जाता है। कोयल की आवाज़ भी अच्छी नहीं लगती अर्थात् सबकी अलग-अलग मनोदशा में वसंत ऋतु निर्भर करता है। वसंत का बड़ा सुंदर वर्णन करते हुए पद्माकर ने कहा है–

कूलन में कोलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है
कहैं पद्माकर परागन में पौनहू में
पातन में पिक में पलासन पंगत है।
द्वारे में दिसान में दुनी में, देस देसन मे
देखौ दीपदीपन में दीपत दिगंत है।
वीथिन के व्रज में नवेलिन में बोलिन में
बनन में बागन में बगरयो वसंत है।

पद्माकर ने चारों ओर पशु-पक्षी, कोयल, पलाश, ब्रज के रास्तों, गलियों, बागों और पुष्पों के माध्यम से प्रकृति का मनोहारी अद्‌भुत वर्णन प्रस्तुत किया है।

छायावादी के प्रवर्तक हिंदी के प्रमुख गद्य-पद्य रचनाकार जयशंकर प्रसाद ने 'वसंत' नामक शीर्षक से कविता करते हुए लिखा है–तू आता है, फिर जाता है/जीवन में पुलकित प्रणय सदृश/यौवन की पहली कांति अकृश/जैसी हो, वह तू पाता है, हे वसंत ! तू क्यों आता है ?

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से प्रसाद जीवन को वसंत से जोड़ते हुए प्रथम यौवन अर्थात् उत्साहित करने वाले आनंद को वसंत के माध्यम से बिंब रूप में इसका बड़ा ही मनोहर वर्णन किया है। प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाने वाले सुमित्रानंदन पंत ने प्रकृति और वसंत को लेकर प्रकृति का सुंदर चित्रण करते हुए कहा है–

चंचल पगदीप-सिखा के घर गृह, मग, वन में आया वसंत।
सुलगा फाल्गुन का सूनापन, सौंदर्य शिखाओं में अन्नत।
सौरभ की शीतल ज्वाला से फैल उर-उर में मधुर दाह।

विद्यापति ने जहां मनोहारी वसंत के माध्यम से जीवन के कुछ सुखद क्षण को बताया वहीं दूसरी तरफ़ फूल के आगमन के साथ वृक्षों में नव किसलय सुगंधित वायु से वसंत का आगमन बताया है। निर्गुण भक्तिधारा के कवि कबीरदास ने अपनी 'साखी' के माध्यम से इसका वर्णन करते हुए कहा है–रितु वसंत जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात/ तोत नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात।।

आया वसंत भर पृथ्वी पर, स्वर्गिक सुंदरता का प्रवाह।

वसंत ऋतु के आ जाने से जहां पतझड़ का समापन होता है और ठंडी हल्की हवा में पुष्प की सुगंध चारों दिशाओं में फैल जाती है मानो पृथ्वी पर स्वर्ग वसंत के माध्यम से आ गया है। सुमित्रानंदन पंत ने कोयल के माध्यम से वसंत के आगमन की सूचना का वर्णन करते हुए मानो मनुष्य से श्रेष्ठ पशु-पक्षी को बताते हैं जो कि महक से जान जाते हैं–

काली कोकिल! सुलगा उर में स्वरमयी वेदना का अंगार,
आया वसंत घोषित दिगन्त कहती, भर पावक की पुकार।

इसी प्रकार से महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'ध्वनि' शीर्षक नामक कविता में इसका वर्णन करते हुए लिखा है–

अभी अभी ही तो आया है/मेरे जीवन में मृदुल वसंत–/अभी न होगा मेरा अंत।

उपर्युक्त पंक्ति के माध्यम से निराला ने वसंत ऋतु से अपने जीवन की सुखद शुरुआत करते हुए अपने लेखन और आयु को दीर्घ बताने का प्रयास किया है। स्वतंत्रता संग्राम में लेखनी के माध्यम से देश में अलख जगाने वाली सुभद्राकुमारी चौहान ने एक नए वसंत की ओर ले जाने का कार्य करते हुई देश के वीरों को संबोधित किया है–

आ रही हिमाचल से पुकार, है उदधि गरजता बार-बार
प्राची, पश्चिम भू-नभ अपार, सब पूछ रहे दिग्-दिगंत
बीरों का कैसा हो वसंत ?

शिवमंगलसिंह 'सुमन' देश की पराधीनता और नवयुवकों के बलिदान और स्त्रियों के द्वारा वसंत की कल्पना इस प्रकार करते हैं–

जब सजी वसंती बाने में। बहनें जौहर गाती होंगी।
कातिल की तोपें उदधर /इधर नवयुवकों की छाती होंगी
तब समझूंगा आया वसंत!

माखनलाल चतुर्वेदी ने 'आ गए ऋतुराज' कविता शीर्षक के माध्यम से वसंत आगमन से संसार के सभी प्राणियों में नई स्फूर्ति और प्रसन्नता का सूचक बताते हुए इसका बहुत ही मनोहारी प्राकृतिक दृश्य प्रस्तुत करते हुए कहा है–आ गए ऋतुराज/रागिनी पर, नृत्य पर, 'झूम' गा उठे ऋतुराज प्यार पर साहित्य पर, इतरा उठे ऋतुराज/चित्र पर मूर्ति को पिघला उठे ऋतुराज/भ्रमर में मधु में, परन बरसा गए ऋतुराज/आ गए ऋतुराज

रामकुमार वर्मा ने 'पतझड़' कविता शीर्षक के माध्यम से वसंत का वर्णन करते हुए सुख, दुःख के क्रमशः आने-जाने और जीवन जीने की अदम्य जीजिविषा के प्रति ध्यानाकर्षण करते हुए कहा है–

मेरे मन में यह उठा भाव, यदि आज सुखों का हुआ अंत
तो यह पतझड़, भी कभी अंत-पाएगा आएगा वसंत।

'क्या कहकर पुकारूं' संग्रह में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने वसंत को विरह रूपी दंश मानते हुए इसका वर्णन करते हुए कहा है–

फिर वसंत ने मुझे डसा,
फूल भरी डार जिसको था पकड़, खड़ा इतराता।
झूल गिरी मुझ पर अजगर सी, ठंडी एक लपेट ने
मुझे आज फिर कसा, फिर वसंत ने मुझे डसा।

जनवादी कवि नागार्जुन ने 'बादल को घिरते देखा' कविता में वसंत ऋतु का मनोहारी वर्णन करते हुए कहा है—ऋतु वसंत का सुप्रभात था/मंद-मंद था अनिल बह रहा/बालारुण की मृदु किरणें थीं/अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे/एक-दूसरे से विरहित हो/अलग-अलग रहकर ही जिनको/ सारी गत बितानी होती।

प्रस्तुत पंक्ति के माध्यम से वसंत के सुंदर प्रभात के साथ सुखद हवा बहते हुए पृथ्वी पर स्वर्णिम किरणों को उतरते हुए का वर्णन किया गया है जो जीवन जीने की एक नई शुरुआत की ओर संकेत करते हैं। परंपरा और आधुनिकता का स्वर-सेतु बांधने वाले प्रगतिशील लेखक वासुदेवसिंह 'त्रिलोचन' ने वसंत का वर्णन करते हुए प्रकृति के सारे दृश्य जो इस ऋतु की सुंदरता बढ़ाते हैं, उसके प्रति प्रेम, उत्साह, उमंग का दर्शन कराते हुए कहा है—

कोकिल ने गाना गा के कहा—आ गया वसंत
आमों ने बौर ला के कहा—आ गया वसंत।
क्यों मुझको छेड़ती है हवा, बोल बार-बार
उसने ज़रा बल खाके कहा—आ गया वसंत।
नौताल की लहर में बोल ढोल के उठे
गांवों में फाग गाके कहा—आ गया वसंत।

प्रकृति के माध्यम से इसका मानव-मन के भावों को विश्वास के साथ मुखकर बताते हुए कहा है—

ले के उपहार चैत घर-घर में/बात बिगड़ी बना रहा है फिर।
फूल ऋतुराज को मिले, मन भी/नए विश्वास पा रहा है फिर।

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से त्रिलोचन ने कोयल के माध्यम से आम के बौर से गांवों में होली के गीत (फाग) के माध्यम से घर में नए अन्न के आ जाने और वसंत को अपने हरियाली के साथ फूल आ जाने से आशा की नई किरणें उत्कंठित कर जीवन में विश्वास का सूचक बन रहा है। नईम ने 'लिखना तो चाहा था' में वसंत के माध्यम से देश की दशा की ओर संकेत करते हुए कहा है—

लिखना तो चाही गंध पवन, बासंती शाम
लेकिन लिख बैठा में द्रोह दलन जन के पथ वाम।

उपर्युक्त पंक्ति में समाज की एक झलक आज के कवि को लिखने के लिए विवश कर जाती है। वह उस वसंत के मस्त मौसम से दूर जा आज के इस परिवेश पर आधारित हो जाता है। उस वसंत की मोहक गंध को भूल जाता है। इसी प्रकार समकालीन कवि केदारनाथ अग्रवाल ने 'वसंती हवा' शीर्षक कविता के माध्यम से पुराने वसंत के मौसम को आज के इस प्राकृतिक वातावरण में उसी तरह महसूस करते हुए कहा है—

हवा हूं, हवा, मैं वसंती हवा हूं।
वही हां, वही जो युगों से गगन को
बिना कष्ट श्रम के सम्हाले हुए हूं
हवा हूं, हवा, मैं वसंती हवा हूं।
वहीं हां, वही जो धरा का वसंती,
सुसंगीत मीठा गुंजाती फिरी हूं
हवा हूं, हवा, मैं वसंती हवा हूं।

अशोक वाजपेयी ने 'युवा जंगल' शीर्षक कविता में वसंत को युवा तथा जंगल के युवापन का यह एहसास कुछ इस प्रकार कराया है—

ओ जंगल युवा/बुलाते हो/आता हूं
एक हरे वसंत में डूबा हुआ/आता हूं .....

समकालीन कविता और नवगीतकार वसंत का वर्णन किसी न किसी रूप में करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उत्तिमा केशरी ने 'जीने की चाहत' शीर्षक में वसंत को जीवन में नया उल्लास लाने वाला मानते हुए कहा है—

अपनी चेतना में, जीवन से भरपूर
नई ऊर्जा लिए मेरे, जीवन वसंत को
उल्लास से प्रदीप्त कर गया।

समकालीन गीतकार राधेश्याम बंधु ने शीर्षक 'जब वसंत भी' में कहा है—

जब वसंत भी गंध न दे तो, किससे मन की बात कहें।

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से कवि यह बता देना चाहता है कि अब वह वसंत नहीं रह गया जब लोग उत्साहित होते थे। आज के इस शहरी ज़िंदगी में इसका अभाव हो गया है। वह प्राकृतिक पर्यावरण नहीं रह गया, वनों का विनाश होता जा रहा है। परिणामस्वरूप सुगंधित सौरभ का अभाव हो गया है। कवि अपनी इस व्यथा को, प्रकृति के उस सुंदर वातावरण को रेखांकित करने का प्रयास कर रहा है।

समकालीन नवगीतकार राजेश रावल 'सुशील' ने 'यादों के जंगल' शीर्षक गीत के माध्यम से वृक्षों की कटाई और पर्यावरण की चिंता को व्यक्त करते हुए वसंत व्यथा को प्रस्तुत किया है—

सुर्ख, गुलाबी, सेमल, पुष्पों सी मुस्कान हठीली
छुई-मुई सी पलकें, वो आखें, शर्मीली-शर्मीली
वो कोयल सा कंठ, आम सी बातें मधुर रसीली
चंदन-सा शीतल तन, आभा अमलतास की पीली
वो पलास सा यौवन, बेला वासंती मंगल
यादों के जंगल, रह-रहकर आते नयनों में, भूले-बिसरे पल।

जयकृष्ण राय तुषार ने 'बासंती पन्नों पर' गीत के माध्यम से इसका वर्णन करते हुए कहा है—

जीवन के बासंती पन्नों पर, एक कलम चुपके से डोलेगी
जो कुछ भी अनकहा रहा अबतक, मन की उन परतों को खोलेगी।

इस पंक्ति के माध्यम से लेखक एक नई दिशा में लिखने की बात कर रहा है। तुषार ने ध्यानाकर्षण कराते हुए 'मोबाइल गेमों में' नामक शीर्षक में कहा है—

बासंती भार कहां, चंदा की रातें, खत्म हुई लोककथा, परियों की बातें।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत प्राकृतिक सुषमा का देश है। यहां के ऋतु का अपना एक अलग ही अंदाज़ है जिसमें नागाधिराज हिमालय से लेकर चींटी, पशु-पक्षी, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, पुष्पलता आदि सभी मिलकर विशेष अवसर में आकर इसकी शोभा को अलग-अलग किंतु अनेकता में एकता का दर्शन करते हैं। वसंत का यह ऋतु कवि विद्वत्तजन से लेकर ग्रामीणों लोगों तक को हर्षित करता रहा है। आज वृक्षों के कटाव और शहरी जीवन की जीने की होड़ में पर्यावरण को प्रभावित किया है। फिर भी आज के कवि इस वसंत से नहीं बच सके हैं। प्रकृति के पुकार दृश्य को बचाने और संवारनें की आवश्यकता है। प्रकृति पर सदैव विजय पाने की ईच्छा निश्चय ही घातक सिद्ध हो सकती है। हमें सबको प्रकृति के प्रति, जीव-जगत के प्रति सचेष्ट होना होगा। ❑

संपर्क : 407, सृजन, सांईनाथ कालोनी, सेठी नगर, उज्जैन (म.प्र.)

संस्कृत साहित्य में वसंत

अजय कुमार मिश्र

ऋतुराज वसंत उत्साह, उमंग तथा आशा से भरा मास होता है। ताज़गी और स्फूर्ति का ऊर्जाग्रह वसंत फाल्गुन तथा चैत्र मास के आग़ाज़ होते ही आम जनजीवन में तरोताज़ा तथा प्रफुल्लित हो उठता है। यही कारण है कि हर देश-काल में इसकी अहम मौजूदगी रहती है। ग़ौरतलब है कि इस रसराज वसंत को न केवल भारतीय अपितु पाश्चात्य कवियों ने भी अपनी रचना का कैनवास बनाया है। तभी तो विदेशी कवि पी.बी. शेली (1792-1822 ई.) अपने समकालीन नैराश्य तथा सांस्कृतिक पतन को देखकर घबराता है, तो अपनी चर्चित कविता 'ओड टु द वेस्ट विंड' में वसंत को अपने जीने का मेटाफ़ोर बनाकर लिखता है—"ओ, विंड, इफ़ विंटर कम्स, कैन स्प्रिंग बी फ़ॉर बीहाइंड"! लेकिन भारतीय साहित्य विशेष कर संस्कृत भाषा की रचनाओं में इसका ख़ास मिज़ाज का अंकन लिए लगता है। इतना ही नहीं, वसंत का जादू न केवल भारतीय संगीतशास्त्र बल्कि लोककला, चित्रकला तथा स्थापत्य कला में भी देखा जा सकता है जिनका मूल उत्स संस्कृत साहित्य तथा इसके शास्त्र ग्रंथों को माना जा सकता है। आचार्य भरतमुनि ने जहां रंग प्रयोग तथा संगीत आदि के विधान की शुरुआत की, वहीं कालांतर में वसंत मास से जुड़े गायन शैली का भी ईजाद किया गया। शारंगदेव ने 'संगीतरत्नाकर' के 'राग विवेक' नामक अध्याय में राग आलाप के वक्त समय और ऋतु के महत्व पर बड़ा बल दिया है। साथ ही साथ ग्राम रागों में हिंदोल राग को वसंत ऋतु से जोड़ा गया है। पंडित दामोदर ने भी 'संगीतदर्पण' में वसंत ऋतु के गायन पर प्रकाश डाला है।

मालवा तथा जयपुर आदि स्कूल्स में वसंत मास से जुड़ी चित्रकारी देखी जा सकती है। ध्रुपद घराने का होली से जुड़ा ब्रज का लोक संगीत 'रसिया' भी चर्चा के लायक है। इसी प्रकार संभोग तथा विप्रलंभ शृंगार से जुड़ा 'झलकुटिया' तथा 'साधारण', 'चैता' और कृष्ण तथा राधा की लीलाओं पर आधारित बारह महीनों तक लगातार गाए जाने वाला गीत 'बारहमासा' ने वसंत ऋतु को लोकपरक शास्त्रीय आयाम दिया। ऐसे ही इस ऋतु में मनाए जाने वाले व्रत-त्योहार 'वसंत पंचमी' (सरस्वती पूजा), 'होली', 'रामनवमी', 'विहू', 'वैशाखी', 'तमिल पुटुंडु' तथा 'हनुमान जयंती' आदि ने सहकारी संस्कृति को पनपने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भागवत के 'रास पंचाध्यायी' (10वें स्कंध के पांच अध्यायों का गुच्छ) को आधार बनाकर मणिपुर में देवर्षि भाग्यचंद्र (17वीं शताब्दी) ने जहां वसंत रास में जान फूंका वहीं वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टिमार्ग के ज़रिए परम आत्मा भगवान कृष्ण के साथ राधा के एक ही रूप में गोपी के विविध रूपों का एकाकार से वसंत के महत्व को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राधा और कृष्ण की लीलाओं के लिए 'विष्णु पुराण', 'हरिवंश पुराण' खास कर 'ब्रह्म-वैवर्त' जिसमें शृंगार की विलासिता अपनी पराकाष्ठा पर दिखती है, ने पावरहाउस का काम किया लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वसंत संगीत के लिए वैदिक साहित्य ने भी इसके उद्भव के बीज का ख़ाका तैयार किया क्योंकि 'यजुसंहिता' में ऋतु के हिसाब से साम (गायन) का विधान है तथा 'आश्वलायन' गृहनसूत्र में भी संस्कारों, ऋतु यज्ञों तथा उत्सवों का बड़ा अच्छा वर्णन है। कवि जयदेव ने अपने विश्वविख्यात गेय काव्य 'गीत-गोविंद' के ज़रिए राधा-कृष्ण के अनुपम प्रेम को तात्विक प्रतिष्ठा दी और राधा ने कृष्ण को अमर कर दिया। इसमें 'वसंतराग' भी ग़ौरतलब है तथा 'गुर्जरी राग' के गीत में कुरबक पुष्प की भी चर्चा महत्वपूर्ण है—"कुरबक कुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने।" (7/15/23)। ऐसी मान्यता है कि यह वृक्ष सिर्फ वसंत मास में ही खिलता है, वह भी किसी युवती के द्वारा, आलिंगन किए जाने पर ही। नारी और वृक्ष को सहज उर्वरता तथा नूतन सृजन के प्रतीक हैं। प्राकृत काव्य 'गाहा-सत्तसई' के लेखक हाल कभी-कभी कालिदास के सौंदर्य विधान को मात देते दिखते हैं क्योंकि कालिदास नायिका के गोरेपन का बखान तो करते हैं लेकिन कवि हाल यह सलाह नहीं देते कि नायिका चांद निकलते ही बाहर निकले, क्योंकि वह इतनी गोरी है कि कम चांदनी में पहचानी नहीं जा सकेगी—"दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकायां कः प्रेक्षते मुखं ते ॥7/7"

कालिदास ने भी अपनी रचनाओं में वसंत का बड़ा ही मनोरम

वसंत का जादू न केवल भारतीय संगीतशास्त्र बल्कि लोककला, चित्रकला तथा स्थापत्यकला में भी देखा जा सकता है जिनका मूल उत्स संस्कृत साहित्य तथा इसके शास्त्र ग्रंथों को माना जा सकता है। आचार्य भरतमुनि ने जहां रंग प्रयोग तथा संगीत आदि के विधान की शुरुआत की, वहीं कालांतर में वसंत मास से जुड़े गायन शैली का भी ईजाद किया। शारंगदेव ने 'संगीतरत्नाकर' के 'राग विवेक' नामक अध्याय में राग आलाप के वक्त समय और ऋतु के महत्व पर बड़ा बल दिया है।

मानवीकरण किया है। इस लिहाज़ से उनकी कृति 'ऋतु संहारम्' संस्कृत साहित्य में एक अनूठी रचना है जिसमें वसंत मास के न केवल अनुपम सौंदर्य का वर्णन किया गया है अपितु इस ऋतु के आने पर आम जनजीवन के हावभाव तथा पहनावा आदि का भी बड़ा ही जीवंत ख़ाका खींचा गया है। इस ऋतु में मनमोहकता एवं शृंगार की कमनीयता बेजोड़ होती है। आमों की मंजरियां तथा उन पर मंडराते भौंरों के मदमस्त झुंडों की पंक्ति वसंत के मित्र कामदेव के लिए क्रमशः धारदार बाण और उनकी प्रत्यंचा का रूपक बनाता है। इस कारण से प्रेमिल के मन पर इसका जादू चलना ज़ाहिर-सी बात है। वसंत ऋतु में उगे वृक्ष-लताओं के पत्रों से सजे-संवरे सोने के रंग लिए कामनियों का मुख और उनके द्वारा पहने गए रत्नों के बीच मोतियों का प्रतिबिंब ऐसा वैसा ही लगता है, मानो पसीना फैल गया हो। शृंगारों का मासोत्सव वसंत में पसीने की उद्भावना शृंगार रस के भारतीय काव्य-शास्त्रीय फ़लसफ़ा की भी तसदीक करता है। महाकवि माघ ने भी 'शिशुपालवधम्' के 'सुरतवर्णन' नामक दशम् सर्ग में लिखा है कि प्रियतमाओं के आलिंगन सुख से रमणियां इतना उत्तेजित हो गईं कि उनके भी वस्त्र सात्विक भाव वाले पसीने से भीगकर उससे पानी बहने लगा। 'ऋतुसंहारम्' में यह भी वर्णन है कि इस वसंत में कामदेव प्रेमिकाओं पर इतना हावी होता है कि गात्रतप शमन के लिए अगर (एक किस्म का सुगंधित पदार्थ), केशर तथा प्रचुर मात्रा में सिंदूर और कस्तूरी मिला लेप अपने शरीर के अंगों पर किया करते हैं। इन कांताओं के कानों में कनेर का तरोताज़ा फूल, चंचल केसुओं में अशोक तथा नवमल्लिका के नए-नए खिले पुष्पगुच्छ उनकी सुंदरता में चार चांद लगा देते हैं। प्रेमी भी इस ऋतु के आग़ाज़ के साथ ही गर्म कपड़े का पहनावा उतारकर, हिना के रंग

से रंग तथा हल्के और बारीक धागों के कपड़ों को सुगंधित कर पहनना शुरू कर देते हैं। यह वस्त्र विधान भारत-चीन के प्राचीन कालीन व्यापारिक तथा सांस्कृतिक रिश्तों के फ्लाईओवर 'सिल्क रूट' को भी इंगित करता है। इस मधुमास में छोटे-छोटे जीव-जंतुओं तथा पक्षियों पर भी वसंत का रास छाया होता है। तभी तो भौंरे भी कमल पर अपना अड्डा जमाकर लुभावने गुंजार से उसकी खुशामद में लगे रहते हैं—"कूजद् द्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्थः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटुः" ॥4॥ (ऋतुसंहारम्)। इतना ही नहीं 'रघुवंशमहाकाव्यम्' में तो ये भौंरे उस हवा का भी पीछा नहीं छोड़ते जो खिले फूलों के परागों को उड़ाए जा रहे होते हैं। मानो ऐसा लगता है कि कामदेव का पताका हो या मधुमास वसंत के रूप निखारने के लिए पाउडर हो—"ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुक्षियः ॥9/45॥ उसी प्रकार प्रेमी भौंरे द्वारा अपनी प्रेमिका का पीछा करता हुआ फूल रूपी एक ही कटोरे में उसके ही साथ पुष्परस का मधुपान करना भी पर्सोनिफ़ेशन का बड़ा ही लाजवाब नज़ीर माना जा सकता है। काले मृग द्वारा अपनी जीवन संगिनी की देह को सींग द्वारा सहलाना और उष्ण-कोमल प्रेमिल सुख की वजह से हिरनी की आंखों में काम के सुख का अंकन भी वसंत ऋतु में जड़-चेतन के सघन भावनात्मक भेद-भाव को भी सर्वथा अपाकृत करता मालूम पड़ता है। ग़ौरतलब है कि कालिदास जहां उपरोक्त पराग वर्णन में हर्बल कोस्मेटिक का भी संकेत देते हैं वहीं समकालीन संस्कृत कवि ओम प्रकाश पांडेय अपने पेरिस देश प्रवास में देखते हैं कि इस वसंत मास में पेरिस नगरी की कांताएं तथा महिलाएं अपने होठों में लिपस्टिक लगाने से हरगिज़ नहीं चूकती हैं—"अधरो युवतीव रंजितः कचपाशस्तु पुरेव गुम्फितः ॥16॥" (रसप्रियाविभावनम् 2005 ई.)। इन वन्य जीवों के अलावा फॉन और फ्लोरा के बीच वसंत मास का राग भी मानवीकरण का बड़ा ही जीवंत मिसाल है। इस ऋतु के कारण प्रकृति में हरीतिमा तथा उसमें समाए मन लुभावन मादकता पेड़-पौधों में भी अंगड़ाई लेता दिखता है। यही कारण है कि इस मनोरम काल में हरे-भरे वृक्ष अपनी डालियों द्वारा पल्लवरूपी होंठ को आलिंगित किए बिना नहीं रह पाते हैं। यही कारण है कि 'मालविकाग्निमित्रम्' में भी ऋतुराज वसंत की शोभा तथा सुंदरता युवतियों के शृंगारों को भी मात दे देता है। तभी तो तिलक के फूलों पर मंडराते भौंरे युवती के भाल पर चिपकी बिंदी के लालित्य को भी फीका कर देता है।

भारतीय संस्कृति में आमतौर पर लाल रंग प्रेम तथा पीलापन शुभ का प्रतीक माना गया है। कामदेव के पांच पुष्प बाणों में अरविंद भी कौमार्य तथा कमनीयता के साथ-साथ लालिमा के प्रतीक के रूप में कामाकर्षण का औज़ार बताया गया है। 'ऋतुसंहारम्' में महाकवि लिखता है कि इस वसंत के महीने में पलाश के वृक्ष अपने लाल फूलों के गुच्छों से जब लद जाते हैं तो वसुंधरा भी नई-नवेली सजी-धजी दुल्हन की तरह लगने लगती है। कामदेव का सहचर तोता भी है। यही तोता इस पलाश के पुष्पगुच्छों को अपनी चोंचों से क्षत-विक्षत कर देता है। यहां भी वसंत ऋतु द्वारा जीव-जंतुओं के लिए ललित भोज्य पदार्थों के बंदोबस्त तथा कामभाव की पेशकश को भी पुष्ट करता है। यही कारण है कि वसंत ऋतु जड़-चेतन के समग्र उत्सव का राग भरा मास है। कुंदपुष्प की तरह मन लुभावन प्रेमिकाओं की मुस्कान वनवासी ऋषि-मुनियों को भी रिझा लेती है। कामदेव का अभिन्न अनुगामी कोयल भी प्रेमी-प्रेमिकाओं के दिल और दिमाग़ पर अपना जादू चलाना नहीं भूलता है। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि जब प्रेमी कोयल युगल अपनी संगिनी को नहीं तलाश पाता है तो व्याकुल होकर अशोक के वृक्षों के फूलों में मानो इसलिए गुमनाम हो जाता है कि वह अपने जीवन साथी की चिता वेदी पर अपने-आप को न्योछावर कर रहा हो—"विरहार्ता प्रविष्टानु रक्ताशोक चितामीव॥" (सुभाषितावली, श्लोक संख्या, 1648)।

आज के बहुचर्चित कवि-उपन्यासकार राधावल्लभ त्रिपाठी ने वसंत ऋतु के मेटाफ़ोर को समकालीन पर्यावरण संतुलन तथा रिश्तों की शुष्कता के साथ-साथ जनमानस के विस्थापन का एक नया क्लासिक्स गढ़ा है। बढ़ते हुए महानगरीकरण तथा आपसी रंजिश की वजह से अब वसंत रसोईघर में ग्रहिणी की साड़ी पर लगी हल्दी तथा मसालों के धब्बों के रूप में पनाह ले रहा है—'वसंत घबड़ा सा गया है/ दूर खड़ा कहीं से वह ताक रहा है/ आशंकित कि कहीं छिड़ न जाए विश्वयुद्ध/ फिर क्षीणकाय/ सांस लंबी खींचता/ किसी तरह आता है वह।" (वसंतलहरी, चतुरस, पृ. 83, साहित्य अकादेमी, दिल्ली, 2006 ई.) कवि त्रिपाठी अपने इसी संस्कृत कविता-संग्रह जिसका उन्होंने खुद पुष्कल अनुवाद भी किया है, उसमें लिखते हैं—'कोकिल कूककर उन्हें याद दिलाने की करता है कोशिश/ पर किसी तरह दबी-भी कूक निकलती है/ बैठ गए उसके गले से/ भौंरों को मिलते नहीं हैं फूल/वदहवास वे चले आते हैं भीतर/हमारे घर में/और सिर फोड़ते हैं अपना/ दीवारों से टकराकर/ गिर पड़ते हैं, फर्श पर'। (वही)

संस्कृत हाइकु तथा मोनो-इमेज के जनक कवि हर्षदेव माधव भी चुटकी लेते वसंत को इस बात की सलाह देते हैं कि वह आम मंजरी को चुनने में जल्दबाज़ी कतई न करे और अपने पसंदीदा मंजरी पर ठिकाना बनाए—"आम्रमंजरी—चयने यापय दीर्घान्दिवसान ॥" (एही, भावस्थिराणि जननांतरसौहृदानि', पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद 2000 ई.)।

कवि माधव को लगता है कि वसंत ऋतु का संगीत 'हिंदोल' आम के वृक्ष पर ऋतुराज वसंत को सुनाता है। (वही) उसी प्रकार 'पुष्पेषु' कविता में चैत मास में फूलों की पूजा तथा जलती आग में चटपट की आवाज़ की तुलना भौंरे की गुंजन से करना भी वसंत मास को एक अभिनव छवि देता है। त्रिवेणी कवि अभिराज राजेंद्र मिश्र ने भी अपने संस्कृत ग़ज़ल संग्रह 'शिखरिणी' (राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली 2012) में बिछुओं की छनकती आवाज़ में भ्रमरों के गुंजार तथा स्मृति के उद्यान में लिपटे अंकन के दृश्य से वसंत को संस्कृत ग़ज़ल का बड़ा ही जीवंत जामा पहनाया है। संस्कृत ग़ज़लकार मिश्र को किसी प्रेमिका के स्वरों में ही समय-समय पर मयूर तथा कोयल के साथ भागीदारी का सघन एहसास होता है—"क्वचिदुबर्हिणां चातकानां पिकानाम्/ स्वरैरेव ते सन्निधिं संशयेऽहम् ॥7॥ संस्कृत भाषा के वैश्विक कवि रमाकांत शुक्ल ने भी अपने चर्चित काव्य-संग्रह 'भाति में भारतम्' में होली तथा इसी मास वसंत से जुड़े सरसों आदि की खेती का भी ज़िक्र किया है। उनकी एक अन्य कविता में लहलहाते तथा पीलिमा की चादर बिछाए धरती पर सरसों की खेती तथा गांव के बच्चों द्वारा सीटी बजा-बजाकर उसकी रखवाली वसंत वर्णन को संस्कृत भाषा के 'पोस्टमोडर्निस्ट' नज़रिए को इंगित करता है।

ऋतुओं का राजा वसंत ऋतु ने जीवन के विविध प्रसंगों को बड़ी संजीदगी से प्रभावित किया है। फलतः हॉलीवुड का भी इससे अछूता न रहना भी स्वाभाविक है। इस लिहाज़ से फिल्म 'बसंत बहार' (1956 ई.) भी ग़ौरतलब है जिसमें पंडित भीमसेन जोशी के गायन का अंदाज़—'केतकी गुलाब जूही/चंपा बन फूल' आज भी बड़ी ताज़गी भरा लगता है। इस सिलसिले को मन्ना डे जैसी कई हस्तियों ने अपनाया। संस्कृत भाषा भी अपनी रचनाधर्मिता को वसंत वर्णन प्रसंग के बहाने अपनी भाषा की जीवंतता को प्राचीनतम से आधुनिकतम कड़ी तक बड़े सशक्त ढंग से जोड़ती है। इससे पाश्चात्य विद्वान शेल्डॉन पॉलोक के उस विचार का भी खंडन होता है जिसने आज के संस्कृत भाषा की ऊर्जस्विता को लेकर कई मनगढ़ंत सवाल उठाए हैं। ❑

संपर्क : राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, 56/57, इंस्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली

ललित निबंध

इन डारन वे फूल

केशव प्रसाद वाजपेयी

कवि विहारीलाल ने जब एक भौंरे को गुलाब के मूल में अटके देखकर कहा था– ह्वैहैं बहुरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल–तो निस्संदेह, वसंत ऋतु बीत चुकी थी। अब बात यह थी कि भौंरे को देखकर कवि के मानस-पटल पर वसंत की मनोहारी स्मृति उभर आई थी। इस स्मृति के कारण वह मधुर व्यथा से संतृप्त हो आत्मविभोर हो उठा था। कवि बिहारी व्यथालु इसलिए थे कि उन्हें उस भौंरे की पीड़ा की कल्पना हो आई थी। दर्द इसलिए अधिक बढ़ गया कि अब वे सुंदर और सुगंधित पुष्प गुलाब की हरी-भरी डालों में निरास्तित्व थे। बिहारी की आत्मविभोरता का कारण कविसुलभ सौंदर्यप्रियता थी जो काल्पनिक वासंती पुष्पों से तुष्टि पा रही थी। वह शृंगार-रस के रससिद्ध कवि थे और राजा जयसिंह के हाव-भाव-चाव भी देख चुके थे इसलिए, उन्हें भलीभांति विदित था कि वसंत को अपने समय पर आना ही है। इसके लिए न अलि को कोई प्रयत्न करना था, न कवि को और न राजा जयसिंह को।

वसंत का क्या कहना! उसका अस्तित्व त्रिनेत्र के कोप से भी नहीं मिटा क्योंकि वह सब के सामने उपस्थित होकर इसकी पुष्टि करता आया है। कहा भी जाता है–प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या जरूरत!

भले ही कामदेव भस्मीभूतावस्था में अनंग हो गया, लेकिन शिव और शिवा के प्रणय का साक्षी वसंत आज भी अजर-अमर है। जगत के जीवन की शक्ति वसंत मन की मुक्तावस्था का प्रेरक तो है ही, सच पूछो तो यह जितना बाहर दिखाई देता है उतना ही अंतर में भी रचा-बसा है। वसंत का आगमन जीवन में उत्सव का सहज पदार्पण है। यह एक ऐसे उत्स का उद्रेक है जिसमें प्रकृति मुक्त होने की स्वच्छंदता चाहती है। यह प्रकृति का स्वायत्तता के प्रति नैसर्गिक प्रयास है। इस उत्सावस्था में हृत्तंत्री के मृदुल तारों के झंकृत स्वर पुष्पहास के समान आकर्षक, मधु के समान मादक और मनोहर कल्पना के समान प्रिय लगते हैं। इसमें आहुति बनने के लिए निजत्त्व समग्रतः तत्पर हो जाता है। ममतामयी धरित्री यज्ञशाला बन जाती है। पूत भावों की अग्नि प्रज्वलित हो यज्ञशाला को दिव्यता प्रदान करती है। इसमें तप कर सुख-दुख, राग-द्वेष, पाप-पुण्य, इच्छा-अनिच्छा, दैन्य-दुराग्रह आदि अपना अस्तित्व इसी में विलीन कर देते हैं। स्वत्त्व का अंतरण स्वार्पण में होकर भावाग्नि की पवित्रता को धारण कर वह धन्य-धन्य हो जाता है। अब एक ही ध्येय होता है–इस वसंतोत्सव को धूमधाम से कैसे मनाएं। इस समय आह्लाद की अतिरेकता संभाले नहीं संभलती। जो वसंत अपने विविध रंगों से सराबोर, अपनी तीव्रता में प्रखरतम हो संपूर्ण धरा को ऊर्जस्वित कर देता है, उसे संभालना अजेय पौरुष का कार्य है। इसके आनंद में सहभागी होने के लिए इसके रंगों की ज्वाला को धैर्य से धारण करना होता है। इस ज्वाला के ताप से तुच्छ स्वार्थों की लंका का दहन करना पड़ता है।

जैसी डालें होंगी वैसे पुष्प होंगे। बीज का गुणधर्म तो डालें विकासक्रम में ग्रहण कर चुकी होती हैं। अब उन्हें प्रतीक्षा रहती है अनुकूल ऋतु की जिसमें उन्हें स्तबकों से लद-फंद जाना है। वसंत के आने पर इन डालों पर मृदुल विविधवर्णी सुगंधित और मनोहारी सुमनों के झुंड के झुंड अपनी चंचल खिलखिलाहट से दिग-दिगंतों को मोहक जादू में बांध लेते हैं। तब यौवन का भरपूर आवेग सर्वत्र दिखाई देता है। धरती को पंखुड़ियों और परागकणों से पाट देने वाले पुष्प परस्पर तरुणाई की होड़ में दल बांध जुट जाते हैं। इसी भावदशा में जीवंत चोले वासंती रंग में रंगे और रंगाए जाते हैं। तभी प्रेम में त्याग का मिलन होता है और स्वार्थ अपनी इति का वरण कर अस्तित्वशून्य हो जाता है।

सोचिए, एक वसंत बीत चुका है। मन में कसक है कि वह पकड़ में नहीं आया। आंगन-द्वार, वन-उपवन सभी उसे जाते हुए देखते ही रह गए। नगर-डगर की कुछ समझ में आता कि इससे पहले ही उसका वासंतीपन उससे दूर चला गया। वसंत से इस वियोगावस्था के कारण कवि को अंततः कहना

> *वसंत का क्या कहना! उसका अस्तित्व त्रिनेत्र के कोप से भी नहीं मिटा क्योंकि वह सब के सामने उपस्थित होकर इसकी पुष्टि करता आया है। कहा भी जाता है–प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या जरूरत!*

ही पड़ा–धैर्य रखो, जब अनंग का सहचर लौट कर फिर आएगा तो वृक्षों की डालों में सुंदर फूल पुनः सज उठेंगे। कारण, अनंग के सखा की उमंग में ही इस रस और सुषमा के कोष का आस्वादन संभव हो सकता था।

वस्तुतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है वसंत। अब ऋतुराज की भावाकुलता, मस्ती, रंग, रूप और सुगंध के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा तो करनी ही पड़ेगी। ऋत्वाधिप, कुबेर जैसा ख़ज़ाना लिए सदा घूमता तो नहीं रहता कि उसे यहां-वहां औचक लुटाने लगे। वह तपकर, भीगकर, ठिठुरकर, विगलित और कृश होकर अपना कोष पूरा करता है। जब साधना का चक्र पूरा हो जाता है तब वसंत का ओज भव्यता और दिव्यता का प्राकट्य करता है।

अब कवि की आशा और अलि की अभिलाषा का क्या कहा जाए! अलि की अभिलाषा देखकर ही कवि में वसंत की आशा जागी थी। अब क्या गुलाब के मूल में अटकने या लिपटने से वसंत आ ही जाएगा? अलि की जड़ता ने कवि को भी भ्रमित कर दिया। यह भी माना जा सकता है कि कवि भ्रमित नहीं हुआ बल्कि वह आशावादी था जो कवि का एक अच्छा गुण होता है। भक्तकवि तुलसीदास ने इसी आशावाद का गुण धारण करते हुए निर्भयता से लिखा था–'प्रबिसि नगर कीजे सब काजा'। निराशावादी कवियों के निराशावादी आलोचक भले ही इस पर विश्वास न करें लेकिन अन्य सभी विश्वास करें, यही कलमकार की हार्दिक कामना है। यह बात सच है कि बिहारी के नायक-नायिका रीतिकालीन प्रभाव में आकर कभी-कभी निराश भी होने लगते थे किंतु यह तो उस काल के मनुष्य के विरही साहित्यिक स्वभाव में थोड़ा-सा सम्मिलित था। यह मानने में प्रत्यक्षतः कोई हानि भी नहीं दिखाई देती। तो भी अंततोगत्वा वे इसके प्रभाव से मुक्त हो जाते थे। कारण यह था कि विरही युगल संयोग शृंगार को प्राप्त कर ही लेते थे। ऐसे में बिहारीलाल

यद्यपि वसंत रसप्रदाता है तथापि रसिक अलि को गुलाबी मकरंद छक कर पीने को न मिले तो उसे किसी भी वसंत से क्या लेना-देना। न आए तो उसकी बला से! अब भले ही अनार में चाहे जितने फूल लगे या कचनार कचकचा कर फूले लेकिन गुलाब नहीं फूला तो उसके लिए सब व्यर्थ! उसकी आस में यही तो वियोग-व्यथा छिपी है। अलि बेचारा क्या करे? उसके मन में ही यह बात घर कर गई है कि गुलाब ही सर्वस्व है अन्यथा दूसरे भंवरे तो गुलाब के गुलाम न बनकर कचनार और पलाश आदि पर भी रम जाते हैं। कोई-कोई तो गेंदे के फूल से ही संतोष कर लेते हैं। यह तो अपनी-अपनी निष्ठा है। पलाश वालों को तो निश्चित ही केसरियापन सर्वाधिक रुचता है। अतएव प्रत्येक भौंरे की कहानी कुछ अलग ही प्रकार की है।

के आशावाद पर शंका करना घोर न सही आंशिक अन्याय तो है ही। अतः कवि विहारीलाल से मेरी सहानुभूति पर आप सहमत न हों तो आप भी मेरी तरह एक आलेख अवश्य लिखें।

उधर अलि की जड़ता क्षमायोग्य हो तो भी उसकी मनोकामना की पूर्ति सुगम नहीं है। क्या वसंत गुलाब का चाकर है? यह भी मान लिया जाए तो क्या वसंत को पता है कि अलि अमुक गुलाब के पौधे में अटका पड़ा है और प्रतीक्षातुर उसकी बाट जोह रहा है? कई लोग कहते हैं कि सारा संसार वसंत की चाकरी करता है, उसके इशारे पर मुस्कराता, हंसता, गाता, नाचता और झूमता है। हां, संसार का एक अंश जो वियोगावस्था या विधुरावस्था में रहने को विवश होता है, उसे इसका अपवाद माना जा सकता है। कुछ अन्य लोगों से यह भी सुनता रहा हूं कि वसंत तब तक पदार्पण नहीं करता जब तक उसकी अभिलषित ऋषमा अपने चरम आवेग को नहीं प्राप्त कर लेती।

लेकिन, अलि क्या करे? वह विवश है। उसकी तृष्णा उसे तब तक अटकाए ही रखना चाहती है जब तक गुलाब के पुष्प का मकरंद उसे पान करने को न मिले। इस पर भी, उसे तृप्ति मिल ही जाएगी, इसका निर्णय करना कम से कम उसके वश के बाहर की बात है। अब तक तो जगत में यही पाया गया है कि तृष्णा का शांत होना लगभग असंभव ही है। तृष्णा का दूसरा नाम कामना या काम ही है जिसके बारे में बाबा तुलसी ने नाना पुराण-निगमागम-सम्मत एक अमूल्य बात कही है—बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुं विषय—भोग बहु घी ते। यह बात साधु-संतों-महात्माओं-कथावाचकों-महंतों-मठाधीशों और अधिकांश राजनेताओं की समझ में प्रायः भलीभांति आ गई है लेकिन रसलोभी होने के कारण भ्रमर इसके मर्म तक नहीं पहुंच सका था। रस का नाम जपते-जपते वह तुलसीदास के पद की प्रथम पंक्ति—मन पछितै हैं अवसर बीते—पर ही टिक गया। अटकना-टिकना अलि का स्वभाव जो रहा है। चाहे गुलाब का झाड़ीदार पौधा हो, चाहे तुलसीदास के पद की पंक्ति, जो उसे पहले दिखाई दिया उसी पर अटक गया। यह भौंरे, भ्रमर, मधुप, मिलिंद, चंचरीक, अलि आदि की अच्छाई है अथवा बुराई इस पर अभी तक कोई सर्वमान्य अभिमत साहित्य ने नहीं दिया है। अवश्य की अलि की इस अतिरेकी और एकांगी प्रवृत्ति से प्रतीत होता है कि वह रीतिकालीनता से प्रभावित होकर भक्तिकालीनता से मुक्त हो चुका है।

यद्यपि वसंत रसप्रदाता है तथापि रसिक अलि को गुलाबी मकरंद छक कर पीने को न मिले तो उसे किसी भी वसंत से क्या लेना-देना! न आए तो उसकी बला से! अब भले ही अनार में चाहे जितने फूल लगें या कचनार कचकचा कर फूले लेकिन गुलाब नहीं फूला तो उसके लिए सब व्यर्थ! उसकी आस में यही तो वियोग-व्यथा छिपी है। अलि बेचारा क्या करे? उसके मन में ही यह बात घर कर गई है कि गुलाब ही सर्वस्व है अन्यथा दूसरे भंवरे तो गुलाब के गुलाम न बनकर कचनार और पलाश आदि पर भी रम जाते हैं। कोई-कोई तो गेंदे के फूल से ही संतोष कर लेते हैं। यह तो अपनी-अपनी निष्ठा है। पलाश वालों को तो निश्चित ही केसरियापन सर्वाधिक रुचता है। अतएव प्रत्येक भौंरे की कहानी कुछ अलग ही प्रकार की है।

इस प्रसंग में वसंत को जब भी आना है, अलि और कवि की मनश्छवि के अनुसार उसे सबसे पहले गुलाब के ही समीप आना चाहिए और जब गुलाब की तबियत बाग़-बाग़ हो उठे तब उसे अन्य सुमन-पादपों पर अनुकंपा करने का विचार करना चाहिए क्योंकि अलि की आली वृत्ति इसी को जीवन की सार्थकता मान बैठी है। मान लीजिए, गुलाब न फूला तो अलि की प्रतीक्षा का क्या होगा? अलि के गुलाबी जीवन का क्या होगा? जीवन के संदर्भ में कवि विहारीलाल के माध्यम से गुलाब वाले मधुकर के सामने यह एक जटिल प्रश्न था! इस आली-अलि ने अपनी एकनिष्ठता से वसंत की अद्भुत गतिविधि कल्पित कर डाली थी। कवि अलि की इस दृष्टि को काल-सापेक्षता की कसौटी पर भांप गया था। तभी वह गुलाब-सापेक्ष वसंत की संभावना व्यक्त कर रहा था।

लेकिन, वसंत तो अलमस्त है। अपनी मस्ती में वह किसी का अंकुश स्वीकारे ही क्यों? वह तो निर्बंध विहार का स्वामी है। वह भला मुट्ठी में बंधा रह सकता है? जब वह व्यक्त होता है तो सारा संसार उसमें व्यस्त हो जाता है। वसुधा उसका सुधारस चख झूम उठती है। उसके वन-वनांतरों में टेसू के रंग-ढंग देखकर रसाल-मंजरिया भी मचल उठती हैं।

पलाशों में उदासी और आलस्य के बंधनों को तोड़ जो उल्लास फूटता है उसे देखकर मन में मुक्ति की रागिनी स्वतः स्फूर्त हो जाती है। तब होली-चांचर-फाग मन के ओज के अप्रमादी निर्झर बनकर बह चलते हैं। सरस हृदय की सतेज साधना से ही वसंत की जीवंतता का जन्म होता है। इसके रूप-रस-गंध लालसा के विषय नहीं बल्कि प्राणवत्ता के प्रमाण होते हैं। इसीलिए, वासंती भावभूमि के जन अपनी मातृभूमि की माटी के स्पंदनों से निरंतर आंदोलित रहते हैं और घुप्प अंधेरों में भी आलोक प्राप्त करते रहते हैं।

जो अलि गुलाबी प्रणय को सर्वस्व मान बैठा है वह पलाश-वनों की ओर दृष्टि डाले भी तो क्यों? उससे टेसुओं के दहकते अंगार-गान नहीं गाए जाते। उन गीतों की ज्वाला का ताप और प्रकाश ऐसे अलि को भयभीत करता है। उसने कभी यह रंग देखा ही नहीं। फिर वह इसके आकर्षण को क्या जाने? गुलाबी सौंदर्य का उपासक स्वार्थी-लालची जीव टेसू की त्याग-तपस्या की आग में क्यों जलना चाहेगा?

यहां कवि अलि और गुलाब की कलियों एवं फूलों के दामन-चोली नामक संबंध के बारे में निर्भ्रांत है। वह यह भी भलीभांति जानता है कि गुलाब और वसंत में कैसा संबंध है। कवि तो इसी विशेषज्ञता के कारण वासंती कविता निरंतर करता जा रहा था। इस काव्य-प्रवाह में, उसके गुलाबी वसंत की अरुणिमा पर केसरिया वसंत का उत्साह भी कभी-कभी विक्षेपित हो जाता था। यूं तो 'माई रे, मेरा रंग दे बसंती चोला' की अभिलाषा रखने वाले, केसरिया वसंत को ही असली वसंत मानते आए हैं। यह तब भी था जब कविपुंगव बिहारी और अलि निज-निज काया सहित भारत की गौरवमयी धरा को अलंकृत कर रहे थे।

पलाशों में उदासी और आलस्य के बंधनों को तोड़ जो उल्लास फूटता है उसे देखकर मन में मुक्ति की रागिनी स्वतः स्फूर्त हो जाती है। तब होली-चांचर-फाग मन के ओज के अप्रमादी निर्झर बनकर बह चलते हैं। सरस हृदय की सतेज साधना से ही वसंत की जीवंतता का जन्म होता है।

वसंत भी तो अपना-अपना होता है। गुलाब का वसंत होता है तो टेसू का भी है और कवियों का वसंत तो सबसे निराला ही होता है। निराले कवि निराला ने तो अपने निराले वसंत को देखकर निराले अंदाज़ में तुर्त-फुर्त घोषणा ही कर दी थी—अभी न होगा मेरा अंत/अभी-अभी ही तो आया है/ मेरे वन में मृदुल वसंत।

तो प्रिय पाठकों, सच्चे वसंत की यह महिमा होती है कि इसके आते ही अपनी मृत्यु चाहने या मानने वाले भी नई ऊर्जा और आशा से भर कर नया जीवन आरंभ कर देते हैं। उधर देव, मतिराम, ग्वाल, पद्माकर प्रभृति रीतिकालीन कवियों के वसंत की तो बात ही विलक्षण है। वहां तो—"बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में" बसंत बगरा ही रहता था जिसमें "औरै रस औरे रीति औरै राग औरी रंग औरे तन औरै मन औरै बन" होते दिखाई देते थे तथा "कूलन में केलिन में कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलित कलीन किलकंत" का रसमयाभिराम जीवंत संसार नयनों के सम्मुख अविराम उपस्थित रहता था। उन्मीलित दृगों से इस वसंत-श्री का पान करना कवियों का सदा से अतिप्रिय व्यापार रहा है। वसंत के इस प्रकार बगरने में टेसू के 'पलाशन पगंत है' का भी अविस्मरणीय योगदान रहा है।

कवि बिहारीलाल चौबे अथवा चतुर्वेदी को टेसू या पलाश से कोई परहेज़ या गुरेज़ था, ऐसा मुझे अभी तब कोई पुष्प प्रमाण नहीं मिला है। इससे यह भी माना जा सकता है कि उन्हें भी टेसू पसंद था। गुलाबी टेसुओं को देखते-देखते कदाचित् खिन्न अथवा विरक्त होकर वह टेसूपन की ओर आकर्षित हुए हों तो किमाश्चर्य?

इस वेबात के बतंगड़ से बिहारी के कथन का एक यह भी मर्म लक्षित हो रहा है—"हे अलि! मुझे घोर आपत्ति न भी हो तो भी यह संशय अवश्य है कि तुम गुलाब में रम कर वसंत की सच्ची मस्ती पा भी सकोगे या नहीं। कारण यह है कि जग के लोगों की आशाएं तो प्रायः मिथ्याफल ही देती हैं, ऐसा देखा-सुना जाता है, फिर गुलाब तो पराधीन भी है। वह माली की काट-छांट और उसके द्वारा प्रदत्त खाद-पानी का सदैव मोहताज जो रहता है!" वस्तुतः यह बात कालांतर में कवि निराला ने—"अबे, सुन बे गुलाब! भूल मत गर पाई खुशबू रंगो आब" आदि कहकर बिल्कुल स्पष्ट कर दी है। उपर्युक्त कथन के क्रम में बिहारी का आशय यह है कि देखो, नादान मधुकर, उस फूल के चक्कर में पड़कर अपना समय बर्बाद मत करो। उस फूल का तो रखरखाव ही कृत्रिम है। अथवा हे मिलिंद! यदि वसंत का आनंद लूटना ही है तो गुलाबी विलासिता का मोह छोड़ो और विस्तार पाकर दूर-दूर जाओ क्योंकि वसंत दूर-दूर तक अपने अनेक रंगों में बिखरा पड़ा है।

कहते हैं, कवि भावप्रवण और क्रांतिदर्शी होता है। इसी विशेषता के कारण किसी क्षण वसंत की तेजस्वी छवि बिहारी की मनोभूमि को झकझोर गई और उन्होंने इस बात पर दुख प्रकट किया कि अलि व्यर्थ की तृष्णा में फंसा पड़ा है। बेचारा! कवि ने इसी रौ में त्याग-तपस्या और कर्त्तव्य-पालन की बात कह डाली। इसका एक प्रमाण बिहारी की चेतावनी में अनायास मिला है—"नहिं पराग नहिं मधुर मधु" आदि। संभव है, कवि ने अलि को गुलाब के फूलों की लालसा छोड़ टेसू के फूलों के भाव को परखने और आत्मसात् करने के लिए प्रेरित किया हो। उन फूलों के केसरिया स्वाद को चखने के लिए उस व्याकुल मधुप को कवि-सहज संकेत दिया हो। दूसरे शब्दों में कहें तो उसने अपने समय के प्रति एक स्वर विद्रोह में उठाया था। यह स्वर भले ही वसंत की रूपाराधना के मिस मुखरित हुआ था। ❑

संपर्क : सरोजिनी-सदन, रामजीपुरम्, रायबरेली (उ.प्र.)

रुक गया प्रवासी ...

पृष्ठ 8 से आगे

थी लेकिन जैसे ही उनकी फीस का प्रश्न उठा, उन्हें जैसे धक्का लगा। उन्होंने तेज़ी से कहा "अब्दुल्ला सेठ, फ़ीस का कोई सवाल ही नहीं है। जनता की सेवा की कोई फ़ीस नहीं हो सकती। अगर मैं रुकूंगा भी तो अपने भाइयों की सेवा के लिए। जैसा आप जानते हैं मैं यहां आए सभी मित्रों से परिचित नहीं हूं लेकिन अगर आपको उनसे मदद मिलने का भरोसा है। हां, एक बात है। आपको मुझे कोई पैसा नहीं देना होगा लेकिन हम जो काम करने की सोच रहे हैं वह पैसों के बिना नहीं हो सकता। हो सकता है हमें कुछ सामग्री प्रकाशित करानी पड़े, स्थानीय वकीलों से सलाह करनी पड़ेगी। इसके लिए कहीं आना-जाना भी हो सकता है। मुझे स्थानीय कानूनों की जानकारी नहीं है इसलिए मुझे संदर्भ के लिए कानून की किताबें चाहिए होंगी। यह सब बिना पैसे के संभव नहीं। साथ ही यह भी समझ लीजिए कि यह काम एक आदमी अकेले नहीं कर सकता। मुझे काफ़ी लोगों की मदद चाहिए होगी।" वहां मौजूद लोगों ने तुरंत कहा "अल्लाह सबसे बड़ा है दयालु है। पैसे की कोई कमी नहीं होगी। आपको जितने आदमी चाहिए, मिलेंगे। अगर आप रुक जाएं तो सब ठीक हो जाएगा।"

इस तरह गांधी का विदाई समारोह एक राजनीतिक सम्मेलन में बदल गया। गांधी को अपने लिए कुछ ज्यादा सोच-विचार नहीं करना था। लोगों के आग्रह पर उनकी प्रतिक्रिया तुरंत और स्वाभाविक थी। उन्होंने एक महीने तक डरबन में ही टिकने का फ़ैसला कर लिया। उनका दिमाग़ आगे की कार्य योजना पर विचार कर रहा था। जल्दी-जल्दी रात का भोजन खाकर सब इस योजना के साथ विदा हुए कि वे अगले दिन फिर मिलेंगे।

अगले दिन दादा अब्दुल्ला के विशाल मकान में सेठ हाजी मुहम्मद की अध्यक्षता में बैठक हुई। डरबन के भारतीयों के बीच हाजी की काफी इज़्ज़त थी। बैठक में भाग लेने वाले सभी लोग यह सोचकर बेहद प्रसन्न और जोश में थे कि अब वे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संगठित होकर संघर्ष करने जा रहे हैं।

प्रकाशन विभाग की पुस्तक : एक महात्मा का अभ्युदय (दक्षिण अफ्रीका में गांधी). लेखक : जे.एन. उप्पल से उद्धृत। (प्रस्तुति : **देवेंद्र कुमार**)

हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य में वसंत

वसंत ऋतु की चर्चा हिंदी साहित्य में पर्याप्त रूप में हुई है। प्रायः वियोग शृंगार के उद्दीपन विभाव के रूप में। लेकिन स्वतंत्र रूप में सौंदर्य की एक छवि के रूप में, वसंत की चर्चा आधुनिक काल में ही अधिक हुई है, बता रहे हैं **वेदप्रकाश सिंह**

संस्कृत साहित्य में कालिदास और खड़ीबोली हिंदी कविता में निराला के बाद गद्य के क्षेत्र में वसंत पर संभवतः आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सबसे अधिक लिखा है। 'वसंत आ गया है' शीर्षक से तो द्विवेदी जी का एक निबंध भी है। इसके अलावा 'आम फिर बौरा गए', 'अशोक के फूल', 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद', 'कालिदास की लालित्य योजना' और 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आदि रचनाओं में द्विवेदी जी वसंत चर्चा करते हैं। वसंत का समय प्रकृति के पुनः समृद्ध होने का समय होता है। यह समय प्रकृति में नए जीवन के संचार का समय भी होता है। भीषण शीत ऋतु के बीतने और प्रकृति में नवता के संचार का भी यही समय होता है। इसी मौसम में प्रकृति, वन, उपवन और मानव मन में हर्ष भरने लगता है। 'सखि वसंत आया' हर्ष भरा वन के मन / नवोत्कर्ष छाया—निराला जी की ये पंक्तियां वन के मन ही नहीं मानवमात्र और समग्र प्रकृति में भरने वाले हर्ष की सूचना और साक्ष्य प्रस्तुत कर रही है। वसंत ऋतु के दिनों में उत्तर भारत के सरसों उपजाने वाले क्षेत्रों में जाने पर सरसों के पीले फूलों से आच्छादित पृथ्वी दूर-दिगंत तक दिखलाई पड़ती है। 'फाग गाता मास फागुन' का भी यही समय होता है।



वसंत ऋतु की चर्चा हिंदी साहित्य में पर्याप्त रूप में हुई है। प्रायः वियोग शृंगार के उद्दीपन विभाव के रूप में। लेकिन स्वतंत्र रूप में सौंदर्य की एक छवि के रूप में, वसंत की चर्चा आधुनिक काल में ही अधिक हुई है।

'संदेश रासक' के रचयिता आदिकालीन कवि अब्दुल रहमान की नायिका वसंत ऋतु को मनोहर मधुमास कहती है। वह उसे वियोगियों की मदनाग्नि को विस्फुरित करने वाली बताती है। साथ ही मलयगिरि समीर का संचार करने वाला कहती है—

ओ गयउ सिसिरु वणतिण दहंतु,
महुमास मणोहरु इत्थ पंतु।
गिरिमलय समीरणु गिरु सरंतु,
मयणग्गि विओइहि विप्फुरंतु॥

(इसके बाद वन तृण को जलाता हुआ शिशिर चला गया और यहां मनोहर मधुमास प्राप्त हुआ। वियोगियों की मदनाग्नि को विस्फुरित करता हुआ मलयगिरि समीर चलने लगा। 'संदेश रासक, संपादक : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.सं. 190)

इसी तरह वियोग का एक चित्र जायसी के 'पद्मावत' में नागमती वियोग खंड में मिलता है। यहां वसंत ऋतु में प्रकृति और वियोगिनी नागमती के ऊपर होने वाले प्रभाव की दारुणता को व्यक्त किया गया है—

चैत वसंता होई धमारी। मोहि लेखें संसार उजारी।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै।
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीज मंजीठ टेसू बनराता।
मोरे आव फरैं अब लागे। अबहूं संवरि घर आउ सभागे।
सहस भाव फली बनफती। मधुकर फिर संबरी मालती।
मो कहं फूल भए जस कांटे। दिस्टि परत तन लगहि चांटे।
भर जोवन एहं नारंग साखा। सोवा बिरह अब जाइ न राखा।
घिरिनि परेवा आव जस आइ परहु पिय टूटि।
नारि पराएं हाथ है तुम्ह बिनु पाव न छूटि॥

(चैत में वसंत की धमार होती है। पर मेरे लेखे संसार उजाड़ है। कोयल अपने पंचम राग में विरह के कारण पिउ पिउ करती हुई काम के पंच बाण मारती है और रक्त के आंसू रोकर सारे वन में गिराती है। उन आंसुओं में डूबकर वृक्षों के नए पत्ते ताम्रवर्ण हो गए हैं। मंजीठ भी उनसे भीज गया है और वन का टेसू उनसे लाल हो गया है। बौरे हुए आम फलने लगे हैं। हे सभागे कंत, अब भी मेरा स्मरण कर घर आओ। वनस्पति सहस्रों रूपों में फली है। भौंरे मालती का स्मरण कर लौट आए हैं। मुझे फूल कांटे जैसे लग रहे हैं। उनके देखते ही मेरे शरीर में चींटे लग जाते हैं। इस नारंग वृक्ष की शाखा में यौवन भर गया है। विरह रूपी सुग्गा उन्हें खाना चाहता है। अब रक्षा नहीं हो सकती। गिरहबाज़ कबूतर जैसे आता है वैसे ही, हे प्रिय, तुम भी आकर टूटो। यह स्त्री पराए वश में है। तुम्हारे बिना उससे न छूट पाएगी। पद्मावत, पृ. सं. 352-353) 'बारहमासा' के रूप में दर्ज यह वियोग वर्णन हिंदी का अपनी काव्यरूढ़ि है। इस कारण भी वसंत की चर्चा हिंदी साहित्य में काफी हुई है। रीतिकाल में ऋतु वर्णन को पर्याप्त महत्व दिया गया। यहां वसंत ही नहीं अन्य पांचों ऋतुओं पर कवियों ने अपने भाव व्यक्त किए हैं। रीतिकालीन कवि देव ने वसंत के प्रभाव का चित्रण करते हुए वसंत को मदन रूपी राजा का पुत्र बताया है। यह पद देखिए—

डार द्रुम पलना, बिछौना नवपल्लव के
सुमन झंगूला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै केकी कीर बहरावै देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै॥
पूरित पराग सों उतरो करैं राई लोन,
कंजकलि नायिका लतानी सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसंत, ताहि,
प्रतापहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

छंद की लय वसंत के प्रभाव की सहज प्राकृतिक लय के रूप में यहां उतर आई है। प्रकृति और काव्य की लय-समानता के संदर्भ में आधुनिक काल में निराला की कविता 'सखि वसंत आया' और केदारनाथ अग्रवाल की 'बसंती हवा' का भी ज़िक्र किया जा सकता है जिसमें केदार जी वसंत को ग्रामीण नवयुवती के रूप में, उसके अल्हड़पन, अटखेलियों के रूप में निरूपित करते हैं। प्रकृति और नारी की सहज स्वाधीनता के भाव को भी दर्ज करते हैं। उसमें भी वसंत के प्रभाव की लय ही बोलती है। 'हवा हूं, हवा मैं बसंती

हवा हूं' में इसे सहज ही महसूस किया जा सकता है।

कविता के क्षेत्र में इस चर्चा के बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की वसंत ऋतु संबंधी चर्चा पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि उनका संस्कृति चेता मन हजारों वर्षों के मानव-इतिहास को जान लेना चाहता है। वे मनुष्य, प्रकृति और शब्द के माध्यम से प्राचीन काल के इतिहास-संस्कृति को, उसकी विकास-यात्रा के अज्ञात-अल्पज्ञात विस्मृत हो रहे हिस्से को, जान लेना चाहते हैं। बार-बार इस इच्छा को वे व्यक्त भी करते हैं और अफ़सोस भी व्यक्त करते जाते हैं। वे 'अशोक के फूल' निबंध में लिखते हैं–"मेरा मन प्राचीन काल के कुंझटिकाच्छन्न आकाश में दूर तक उड़ना चाहता है। हाय, पंख कहां हैं?" (संकलित निबंध, पृ.सं. 3) वे इस कारण अपने आस-पास उपलब्ध छोटी-से-छोटी बात को भी उसकी परंपरा में जानना चाहते हैं। "मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस-साधना के पिछले हजारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है।" 'अशोक के फूल' निबंध में व्यक्त इस आकांक्षा-इच्छा को 'आम फिर बौरा गए' में प्रकट इस वाक्य के साथ मिलकर देखने पर एक संपूर्ण अर्थ बनता है। द्विवेदी जी कहते हैं–'मेरा मन अधभूले इतिहास के आकाश में चील की तरह मंडरा रहा है, कहीं कुछ चमकती चीज़ नज़र आई नहीं कि झपाटा मारा।" यहां वे अपनी भावभूमि के आधार को पाठक के साथ साझा कर रहे हैं। वे वसंत चर्चा में भी इसी उद्देश्य-आकांक्षा के साथ प्रवृत्त होते हैं। उनके निबंधों के साथ-साथ उनके साहित्य को समझने का एक सूत्र भी इन पंक्तियों में अंतर्निहित है। निबंधों की रचना-प्रक्रिया में यह बात काफी दूर तक हमें दिखाई भी देती है।

प्रकृति और शब्द की जो अर्थ परंपरा है, उसे द्विवेदी जी कभी नज़रअंदाज़ नहीं करते। क्या मालूम किस शब्द से, फूल से, पेड़ से, अर्थ की, स्मृति की कितनी बड़ी परंपरा जुड़ी हो। 'अशोक के फूल' निबंध में वे लिखते हैं–"एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है। अशोक की भी अपनी स्मृति-परंपरा है। आम की भी है, बकुल की भी है, चम्पे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है, उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है?" 'यह असहायता बोध इच्छा और अभाव की टकराहट से उपजा है। इच्छा है कि उस स्मृति परंपरा को जान लें, लेकिन उस परंपरा का जीवंत इतिहास अनुपलब्ध है, उसका अभाव है। इसकी टकराहट द्विवेदी जी के निम्न कथनों में व्यक्त हो रही है लेकिन वे हारी मानने को तैयार नहीं हैं। मनुष्य की विजय यात्रा पर अपना अडिग विश्वास रखने के चलते आचार्य द्विवेदी इतिहास-पुराण सभी स्रोतों में जाकर इस यात्रा के सकारात्मक और वर्तमान में उल्लेखनीय बिंदुओं को खोज लाते हैं। वसंत की चर्चा, वसंत ऋतु में फूलने वाली आम्र मंजरियों की चर्चा का निहित उद्देश्य भी कमोबेश यही रहता है। वे मनुष्य की जययात्रा में विश्वास रखते हैं इसीलिए आज के समाज के द्वंद्व को प्राचीन काल के समाज के द्वंद्व के साथ रखकर देखने पर उन्हें आश्चर्यजनक और आश्वस्तिपरक घटनाएं देखने को मिलती हैं और कुछ समानताएं भी। वसंत में आम की मंजरियों के साथ वे बिच्छू की बात करते हैं। यहां एक बड़ी उपलब्धि से पाठक को परिचित कराने से पहले उन्हें आत्मीय बना लेने के शिल्प में अपनी बात कहते हैं। आम के कोरकों अथवा मंजरियों का संबंध एक ऐसे समाज से था जिन्हें 'कंदर्प' जाति कहा जाता है। ये आर्येतर जातियों में से एक जाति है। प्राचीन काल में भारत में आर्यों का अन्य आर्येतर जातियों से दीर्घकाल तक भीषण संघर्ष चला है लेकिन अंततः उन दोनों विरोधी रही जातियों में से मनुष्य की जिजीविषा शक्ति कुछ न कुछ सकारात्मक ग्रहण कर उस विद्वेष को भूल जाती है। यह संकेत आज के सामाजिक संघर्ष में भी मनुष्य की विजय यात्रा के अपराजित बने रहने का है। द्विवेदी जी इस संबंध में लिखते हैं--"आर्यों

प्रकृति और शब्द की जो अर्थ-परंपरा है, उसे द्विवेदी जी कभी नज़रअंदाज़ नहीं करते। क्या मालूम किस शब्द से, फूल से, पेड़ से, अर्थ की, स्मृति की कितनी बड़ी परंपरा जुड़ी हो। 'अशोक के फूल' निबंध में वे लिखते हैं–"एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है। अशोक की भी अपनी स्मृति-परंपरा है। आम की भी है, बकुल की भी है, चम्पे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है, उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है?"

के साथ असुरों, दानवों और दैत्यों के संघर्ष से हमारा साहित्य भरा पड़ा है। रह-रहकर मेरा ध्यान मनुष्य की इस अद्भुत विजय-यात्रा की ओर खींच जाता है, कितना भयंकर संघर्ष वह रहा होगा जब घर में पालने पर सोए हुए लड़के तक चुरा लिए जाते होंगे और समुद्र में फेंक दिए जाते होंगे, पर हम किस प्रकार उसको भूल-भालकर दोनों विरोधी पक्षों के उपास्य देवताओं को समान श्रद्धा के साथ ग्रहण किए हुए हैं। आज इस देश में हिंदू और मुसलमान इसी प्रकार के लज्जाजनक संघर्ष में व्यापृत हैं। बच्चों और स्त्रियों को मार डालना, चलती गाड़ी से फेंक देना, मनोहर घरों में आग लगा देना मामूली बातें हो गई हैं। मेरा मन कहता है कि ये सब बातें भुला दी जाएंगी। दोनों दलों की अच्छी बातें ले ली जाएंगी, बुरी बातें छोड़ दी जाएंगी। पुराने इतिहास की ओर दृष्टि ले जाता हूं तो वर्तमान निराशाजनक नहीं मालूम होता। कभी-कभी निकम्मी आदतों से भी आराम मिलता है।" यह 'निकम्मी आदत' इतिहास बोध से संचालित होने वाली आदत है। इसमें वे प्रकृति, पेड़-पौधे, फूल, ऋतु, पर्व, उत्सव, मेले-ठेले, लोगों के व्यवहार, शब्द की अर्थ परंपरा आदि सभी साधनों से इस मनुष्य की विजय-यात्रा और मानव समाज के जीवंत इतिहास को जान लेना चाहते हैं। यह जान लेना एक गहरे दायित्व बोध के साथ इतिहास बोध से संचालित होता है जिसमें वे वर्तमान मानव समाज की समस्याओं के हल खोजने का प्रयास भी करते हैं। जब ऐसा पहले हो चुका है तो अब भी हो सकता है। जब दो विरोधी जातियों के प्रतीकों को आज हम एक साथ स्मरण कर रहे हैं तो आज के संकट का भी ऐसा ही हल नहीं निकाला जा सकता! ऐसी ही मानसिक प्रवृत्ति में द्विवेदी जी आम्र मंजरियों और बिच्छू का एक साथ स्मरण करते हैं।

जो बात इतिहास में दबी रह गई उसे लोग जान गए हैं और तो और बच्चों की दुनिया को भी आम्र मंजरियों को हाथ पर रगड़कर बिच्छू के ज़हर से बचने का राज़ पता चल गया है। इस एक बात से द्विवेदी जी प्राचीन काल में दो विरोधी रहे पक्षों के अंततः समन्वय की ओर संकेत करते हैं। देवताओं और असुरों के संघर्ष में जो जीत गया उसकी सेना में कृष्ण थे और पराजितों में शिव थे लेकिन अब उनका ज़िक्र विरोधी के रूप में नहीं किया जाता है। द्विवेदी जी इस संबंध में लिखते हैं–"पुराणों की गवाही पर मान लिया जा सकता है कि असुरों की आख़िरी हार अनिरुद्ध और ऊषा के विवाह के अवसर पर हुई थी। असुरों की ओर से भगवान शंकर का समूचा दल लड़ रहा था। शिवजी श्रीकृष्ण से गुंथे हुए थे, प्रद्युम्न अर्थात् कामदेवता स्कंद (देवसेनापति) से। शिवजी के दल में भूत थे, प्रमथ थे, यातुधान थे, बेताल थे, विनायक थे, डाकिनियां थीं, प्रेत थे, पिशाच थे, कूष्माण्ड थे, ब्रह्मराक्षस थे–यानी पूरी सेना थी, सांप-बिच्छू भी रहे होंगे। और तो और, मलेरिया का

बुख़ार भी था। इस लड़ाई में असुर बुरी तरह हारे। शिवजी भी हारे।" आम्र कोरकों के बाण से बेचारे बिच्छू के हारने का भी यही संदर्भ है। आम्र कोरक को प्रद्युमन ने संधान किया। इसी घटना के बाद बिच्छू आम्र कोरकों से कमतर हो गया। और उसके ज़हर का असर भी ऐसे हथेली पर नहीं होता है जिस पर वसंत ऋतु के समय फूलने वाली आम की मंजरियों को रगड़ा गया हो। यह सब चर्चा द्विवेदी जी इस निबंध शैली में करते हैं वह वसंत चर्चा के भीतर समाहित है। जैसे आम और अशोक के फूलने का समय वसंत ऋतु है उसी तरह शिरीष और पलाश आदि के फूलने का भी यही समय होता है। 'शिरीष के फूल' पर लिखते हुए द्विवेदी जी भीषण गर्मी में फूलों से लदे शिरीष को कालजयी अवधूत की संज्ञा देते हैं लेकिन शिरीष वसंत आगमन के साथ लहक उठता है। जेठ मास और आषाढ़ तक बना रहता है। द्विवेदी जी शिरीष की दुर्दमनीयता के बारे में लिखते हैं—"फूल है शिरीष। वसंत के आगमन के साथ लहक उठता है। आषाढ़ तक तो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादों में भी निर्धात फूलता रहता है। जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है। एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भांति जीवन की अजेयता का मंत्रप्रचार करता रहता है।" वसंत में फूल कर शिरीष विकट गर्मियों के लिए अपनी जीवन-शक्ति संचित कर लेता है। मानो आने वाली विषम परिस्थिति का उसे भान हो और वसंत के मौसम में इकट्ठी ऊर्जा को बाद तक काम में लाना हो! यही जीवन की अजेयता है, जिसे शिरीष कालजयी अवधूत की तरह प्रकट करता है।

वसंत की विस्तृत चर्चा द्विवेदी जी 'आम फिर बौरा गए' और 'वसंत आ गया है' निबंधों में करते हैं। यहां उनका निबंधकार अपनी शैली में जीवन-जगत के नाना विषयों के भीतर छिपी इतिहास की कड़ियों को, उनकी अर्थ परंपरा को जान लेना और पाठकों के साथ साझा कर लेना चाहता है। वे आम के बौराने, उसके फूल आने, बिच्छू के ज़हर, अमृत और अम्ल शब्द की परंपरा, मदनदेवता के अमोघ बाण के रूप में आम्र मंजरी और अंततः हमारे देश की संस्कृति, उसकी यात्रा को इस निबंध की परिधि में ले आते हैं। ले आना ऐसी क़िस्सागोई में कि पाठक साथ-साथ चलता हुआ अनेक विषय-प्रदेशों की यात्रा कर डालता है और थकान का नाम भी नहीं महसूस करता। आत्मीय बना लेने वाली सहज बातचीत से वसंत की चर्चा करते हुए द्विवेदी जी नाना विषयों से पाठक का परिचय कराते चलते हैं। ज़रा शुरुआत की अनौपचारिक शैली देखिए—"वसंत पंचमी में अभी देर है, पर आम अभी से बौरा गए। हर साल ही मेरी आंखें इन्हें खोजती हैं। बचपन में सुना था कि वसंत पंचमी के पहले अगर आम्र मंजरी दिख जाए तो उसे हथेली पर रगड़ लेना चाहिए, क्योंकि ऐसी हथेली साल-भर तक बिच्छु के ज़हर को आसानी से उतार देती है। बचपन में कई बार आम की मंजरी हथेली पर रगड़ी है। अब नहीं रगड़ता, पर वसंत पंचमी से पहले जब कभी आम्र मंजरी दिख जाती है तो बिच्छू की याद अवश्य आ जाती है।" यहां वे जिस सहजता से वसंत चर्चा करते हुए आम की मंजरी और फिर बिच्छू पर आ जाते हैं वह देखने लायक बात है। और यहीं से वे बिच्छू वाली बाट को पकड़कर विषय के अगले भाग की ओर पाठक को ले चलते हैं। बिच्छू के स्वभाव की अपरिवर्तनशीलता और आम्र, अम्र, अम्ल, अम्रित और उसके अमृत बनने की चर्चा के बाद द्विवेदी जी महादेव शिव के अचूक बाण बिच्छू और मदनदेवता के अमोघ बाण आम्रमंजरी की बात करते दिखते हैं।

यहां वसंत चर्चा एक माध्यम बन जाता है। उसके सहारे जीवन जगत के नाना विषयों पर वे चर्चा का मौका निकाल लेते हैं। बातचीत केवल वसंत या आम के बौराने पर ही नहीं है बल्कि इस बहाने अपनी संस्कृति के एक पक्ष को सामने लाना भी है। इस संस्कृति में बदलते सौंदर्य बोध की भी चर्चा वे करते हैं। सौंदर्यबोध में हो रहे परिवर्तन की ओर विचार करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं—कालिदास ने आम्र-कोरकों को वसंतकाल का 'जीवितसर्वस्व' कहा था। उन दिनों भारतीय लोगों का हृदय अधिक संवेदनशील था। वे सुंदर का सम्मान करना जानते थे। गृह देवियां इस लाल-हरे-पीले आम्र-कोरक को देखकर आनंद विह्वल हो जाती थीं। वे इस ऋतुमंगल पुष्प को श्रद्धा और प्रीति की दृष्टि से देखती थीं। आज हमारा संवेदन भोथा हो गया है।" संवेदन के भोथे होते जाने के अफसोस के बाद वे निष्क्रिय-उदास नहीं हो रहे हैं, बल्कि पाठक को भारहीन ज्ञान की उपलब्धि कराकर उसकी आस्वदनपरकता में भी वृद्धि करने का प्रयास कर रहे हैं। जिस आत्मीय शैली में वे अपनी बातें करते हैं, उससे ऐसा लगता है कि यह सब कुछ किसी प्रवाह में, गप्प के प्रवाह में आता चला जा रहा है लेकिन ऐसा नहीं है। वे संस्कृति के इतिहास को जानकर-दिखाकर आज की अपूर्णताओं को भरने की इच्छा भी करते हैं। इसी इच्छा का परिणाम यह वाक्य है—"आज हमारा संवेदन भोथा हो गया है।"

वसंत की चर्चा करते हुए भी द्विवेदी जी इसके माध्यम से छिपे हुए मानव-समाज के जीवंत इतिहास को खोज लेना चाहते हैं। वे किसी लोक प्रवाद को हंसकर उड़ा देने के लिए तैयार नहीं हैं। क्या पता किस बात से मनुष्य समाज के जीवंत इतिहास की खोई हुए कोई कड़ी ही मालूम चल जाए। वे आम्र मंजरी के साथ बिच्छू के संबंध पर तब तक विचार करते हैं जब तक कोई स्वाभाविक संबंध पता न चल जाए। द्विवेदी जी इस संबंध में अपने मन की दुविधा को व्यक्त करते हैं—"लेकिन आम्रमंजरी के साथ बिच्छू का संबंध अब भी मुझे चक्कर में डाले हुए है। पोथियां पढ़ता हूं, उनका सम्मान भी करता हूं, पर लोकप्रवादों को हंसकर उड़ा देने की शक्ति अभी संचय नहीं कर सका हूं। मुझे ऐसा लगता है कि इन प्रवादों में मनुष्य-समाज का जीवंत इतिहास सुरक्षित है।' इस जीवंत-इतिहास को वे वसंत चर्चा के माध्यम से सामने लाते हैं।

वसंत की चर्चा करते हुए मनुष्य और वर्तमान समय-समाज द्विवेदी जी के सामने से ओझल कभी नहीं होता। वसंत के आने के बावजूद प्रकृति में उमंग के न आने की बात को, हिंदुस्तान के जवानों में उमंग के न आने की बात से, वे जोड़ते हैं। वसंत में फूलने-वाले वृक्षों का उल्लेख करते हुए महुआ, जामुन, अमरूद, शिरीष, पलाश, आम आदि की चर्चा करते हैं। द्विवेदी जी प्रकृति, समाज और मानव मन में वसंत के लाए जाने की बात करते हैं। वसंत आता नहीं बल्कि ले आया जाता है। प्रकृति के पेड़-पौधे भी और मनुष्य भी इसी नियम से चल रहे हैं। वसंत आ गया है, का शोर-गुल है लेकिन जिन पेड़-पौधे पर यही नहीं आया है उन तक द्विवेदी जी संदेश पहुंचाने के साधन की अनुपलब्धता की बात करते हैं। क्या इन तक यह बात पहुंचाने का कोई साधन नहीं हो सकता।

द्विवेदी जी प्रकृति और समाज को एक साथ जोड़ते हुए लिखते हैं—"पढ़ा हूं, हिंदुस्तान के जवानों में कोई उमंग नहीं है, इत्यादि-इत्यादि। इधर देखता हूं कि पेड़-पौधे और भी बुरे हैं। सारी दुनिया में हल्ला हो गया कि वसंत आ गया पर इन कमबख़्तों को ख़बर ही नहीं। कभी-कभी सोचता हूं कि इनके पास तक संदेश पहुंचाने का क्या कोई साधन नहीं हो सकता! महुआ बदनाम है कि उसे सबके बाद वसंत का अनुभव होता है, पर जामुन कौन अच्छा है। वह तो और भी बाद में फूलता है। और कालिदास का लाड़ला यह कर्णिकार? आप जेठ में मौज में आते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि वसंत भागता-भागता चलता है। देश में नहीं-काल में। किसी का वसंत पंद्रह दिन का है तो किसी का नौ महीने का। मौजी है अमरूद। बारह महीने इसका वसंत ही वसंत है.. थोड़ी दूर पर वह पलाश ऐसा फुला है कि ईर्ष्या होती है। मगर उसे किसने बताया कि वसंत आ गया है? मैं थोड़ा-थोड़ा समझता

हूं, वसंत आता नहीं ले आया जाता है, जो चाहे और जब चाहे अपने पर लें आ सकता है, वह मरियल कांचनार ले आया है। अपने मोटे राम तैयारी कर रहे हैं, और मैं?'' वह वसंत जैसी समृद्धि और वांछित परिवर्तन की चर्चा भी है। यह विषम पूंजीवादी समाज की भी चर्चा है जिसमें किसी का 'वसंत' पंद्रह दिन का होता है और किसी का सालभर का। यह आता नहीं ले आया जाता है। कोई वंचित ही बना रहता है। और कोई संपन्नता से उसके बल पर समस्त समृद्धि को अपने पास इकट्ठा कर लेता है। यह ठेठ वसंत चर्चा ही नहीं हैं बल्कि इसके भीतर गहरे अर्थ ही गूंथे गए हैं। संस्कृति में इतिहास बोध समाहित है और प्रकृति चर्चा में देशकाल का बोध। इसी बोध से द्विवेदी जी के चिंतन को वर्तमानता प्राप्त होती है। वह केवल अतीत चर्चा ही नहीं रहती उसके साथ-साथ उसमें वर्तमानता का बोध भी अनुस्यूत रहता है। यही बोध उनके लेखन को सदा समकालीन बनाए रखता है। यह बात निबंध और अन्य रचनाओं पर भी सटीक बैठती है।

पिछले उद्धरण में वे प्रकृति से चलकर मनुष्य (मैं) तक की चर्चा करते हैं। इस चर्चा से मनुष्य बाहर या कमतर नहीं है। वसंत के आने की चर्चा में ही द्विवेदी जी घर जोड़ने की माया और समाज में पैसे के राज के खत्म हो जाने के उपाय की बात भी जोड़ते हैं। यहां, पैसे का राज खत्म हो जाए, को 'वसंत आ गया है' की चर्चा से द्विवेदी का संस्कृति-चिंतक मन ही जोड़ सकता था। वसंत पर द्विवेदी जी 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' और' कालिदास की लालित्य योजना' के संदर्भ में भी चर्चा करते हैं। वसंत कालिदास को भी परम प्रिय है। कालिदास द्विवेदी जी के प्रिय रचनाकार हैं। कालिदास की वसंतप्रियता के बारे में द्विवेदी जी ने ही लिखा है कि वे अपने किसी भी ग्रंथ में वसंत का, उसके उत्सव का वर्णन करने का कोई मौका नहीं चूकते हैं। और तो और 'मेघदूत' जैसे वर्षा काव्य में भी वसंत के चित्रण का स्थान कालिदास खोज निकालते हैं, 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' में 'ऋतु संबंधी उत्सव' पर विचार करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है—''प्राचीन काव्यों, नाटकों, आख्यायिकाओं और कथाओं से जान पड़ता है कि भारतवर्ष ऋतु संबंधी उत्सवों को भलीभांति मनाया करता था। इन उत्सवों में दो बहुत प्रसिद्ध हैं—वसंतोत्सव और कौमुदीमहोत्सव। पहला वसंत ऋतु का उत्सव है और दूसरा शरद ऋतु का। संस्कृत का शायद ही कोई उल्लेखनीय कवि हो जिसने किसी न किसी बहाने इन दो उत्सवों की चर्चा न की हो। वसंतोत्सव के विषय में यह बात तो और अधिक निश्चय के साथ कही जा सकती है। कालिदास—जैसे कवि ने अपने किसी ग्रंथ में वसंत का और उसके उत्सव का वर्णन करने का मामूली मौका भी नहीं छोड़ा। 'मेघदूत' वर्षा का काव्य है पर यक्षप्रिया के उद्यान का वर्णन करते समय प्रिया के चरणों के आघात से फूट उठने वाले अशोक और मुख की मदिरा से सिंचकर खिल उठने वाले बकुल के बहाने कवही ने वहां भी वसन्तोत्सव को याद किया है।'' यह प्रवृत्ति द्विवेदी जी के प्रिय कवि कालिदास की है। संभवतः इसीलिए वसंत की चर्चा द्विवेदी जी के साहित्य में अनेक स्थलों पर आता है।

'कालिदास की लालित्य योजना' पर लिखते हुए द्विवेदी जी कालिदास की रचनाओं पर बारी-बारी से लिखते हैं। उसमें वे कालिदास की प्रारम्भिक रचना कही जाने वाली कृति 'ऋतुसंहार' में वसंत का रसपूर्ण वर्णन-चित्रण करते हैं। 'ऋतुसंहार' की चर्चा करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं—''और अंत में, वसंत आता है। वसंत क्या आया, प्रफुल्ल आम्रमंजरियों के पैने बाण लेकर भ्रमरावली लो प्रत्यंचावाले धनुष पर उन्हें संधान करके युवक प्रेमियों के चित्त को वेध देने वाला कोई योद्धा ही आ पहुंचा। अद्भुत है यह वसंत। सब प्रकार से सुंदर वृक्ष फूलों से लदे गए, तालाबों में कमल खिल उठे, पवन में सुगंधि

'कालिदास की लालित्य योजना' पर लिखते हुए द्विवेदी जी कालिदास की रचनाओं पर बारी-बारी से लिखते हैं। उसमें वे कालिदास की प्रारम्भिक रचना कही जाने वाली कृति 'ऋतुसंहार' में वसंत का रसपूर्ण वर्णन-चित्रण करते हैं। वसंत की कुछ चर्चा द्विवेदी जी 'कालिदास की लालित्य योजना' में 'कुमारसंभव' के तीसरे सर्ग के संदर्भ में भी करते हैं। यहां समाधिस्थ शिव के सामने पड़ने पर जलकर भस्म होने वाले कामदेव का भी ज़िक्र आता है।

आ गई, स्त्रियों में अनुराग भावना संचरित हुई, संध्या सुखदायक हो गई और दिन रमणीय हो उठे।'' यह सुखदायक रमणीयता वसंत के आने का प्रभाव है। द्विवेदी जी इस प्रभाव के मानव-समाज में फैलने का ही संकेत 'वसंत आ गया है' निबंध में करते हैं। वसंत की कुछ चर्चा द्विवेदी जी 'कालिदास की लालित्य योजना' में 'कुमारसंभव' के तीसरे सर्ग के संदर्भ में भी करते हैं। यहां समाधिस्थ शिव के सामने पड़ने पर जलकर भस्म होने वाले कामदेव का भी ज़िक्र आता है।

वसंत ऋतु में ही पड़ने वाले फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाए जाने वाले मदनोत्सव (होली) का विशद वर्णन-चित्रण द्विवेदी जी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में करते हैं, यहां वे वसंत में खिलने वाले अशोक के लाल फूलों को अलंकरण के रूप में पहने लोगों का भी ज़िक्र करते हैं। उन युवतियों का भी वर्णन करते हैं जिन्होंने अशोक के फूल अपने बालों में लगाए हैं। होली के मदमत्त (मदनोत्सव) का प्रत्यक्ष वर्णन द्विवेदी जी यहां प्रस्तुत करते हैं।

वे वसंत को प्रकृति ही नहीं मनुष्य समाज की सुखद परिवर्तनकारी व्यवस्था का रूप मानते हुए से लगते हैं, जिसमें से पैसे के राज के खत्म होने के बाद ही मानवीय व्यवस्था आ सकती है। वे पैसे और घर जोड़ने की माया के महत्व को अस्वीकार नहीं करते हैं। वे इस संबंध में लिखते हैं—''मैं बराबर सोचता रहा की क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता कि समाज से पैसे का राज खत्म हो जाए! हमारे समस्त बड़े प्रयत्न इस एक चट्टान से टकराकर चूर हो जाते हैं। क्या कोई ऐसी व्यवस्था हो सकती है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने मतलब भर का पैसा पा जाए और उससे अधिक पा सकने का कोई उपाय ही न हो?'' वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था के असीमित-असमान विकास पर यह वाक्य प्रश्नचिह्न लगाता है। द्विवेदी जी इस अंतिम वाक्य से समाज में विषमता की समस्या की ओर भी संकेत करना चाह रहे हैं। विषमता रहित समाज में ही सबक हिस्से वसंत समान रूप से आ पाएगा। नहीं तो किसी का वसंत पंद्रह दिन का होगा किसी का बारह महीने का। यह स्थिति चाहे प्रकृति में अथवा मानव समाज में, द्विवेदी जी दोनों को ही वरेण्य नहीं मानते। न ही इसमें सौंदर्य के दर्शन ही हो सकते हैं। विषमता प्रकृति में हो या मानव समाज में दोनों ही अवस्थाओं में असुंदर होती है। अतिरिक्त जब नहीं होगा तभी सबके पास मतलब भर का होगा। इसके बाद वसंत चर्चा सिर्फ प्राकृतिक न रहकर मानवीय चर्चा में बदल जाती है। वसंत में अर्थ गौरव बढ़ जाता है। वसंत ऋतु मात्र न रहकर अब एक मानवीय परिस्तिथि का द्योतक हो जाती है जिसमें सभी के पास मतलब भर के संसाधन अवश्य हों। यह सपना बेहद मानवीय और जनोन्मुख है। साथ ही आजकल के समाज को देखते हुए बिलकुल प्रासंगिक भी है। ❑

संपर्क : आरजेड-डी 104, महावीर विहार, द्वारका, सेक्टर-1, नई दिल्ली-110045

निराला का काव्य और वसंत

सुधा बाला

आदिकाल से साहित्य में प्रकृति-वर्णन होता आया है और प्रकृति-वर्णन में वसंत का वर्णन सर्वाधिक हुआ है। वसंत को ऋतुओं का राजा कहा गया है। वसंत-रूपी राजा की प्रशंसा में कवियों ने बड़े ही उत्साह से अपनी लेखनी चलाई। आदिकवि कालिदास से ही यह परंपरा हमारे सामने दिखाई पड़ती है। कालिदास ने प्रायः अपने सभी काव्य ग्रंथों में वसंत के आगमन का, उसकी प्राकृतिक सुषमा का बड़ा ही मनोहारी चित्र उपस्थित किया है। 'रघुवंश' महाकाव्य में वसंत यानि मधुमास का आगमन कैसे होता है–

कुसुमजन्य वतो नवपल्ल्वास्तु षटपद्कोकिल कूजितं
इति यथाक्रम्माविर्भून मधुर्द्रमवतीभवतीर्य वनस्थालीम –रघुवंश, 1/26

नए फूलों, नए पत्तों, भवरों के गुंजार और कोयल की कूक के साथ वसंत धीरे-धीरे प्रकृति में अवतीर्ण होता है। आदिकाल के कवि विद्यापति ने तो वसंत के राजसी ठाठ को ही अपनी कविता में साकार कर दिया है–



आयल ऋतुपति राज वसंत
धाओल अलिकुल माधवी पंथ।
–विद्यापति पदावली, बेनीपुरी पृ. सं. 175

ऐसे राजा की अगुआनी के लिए ही भौरें दौड़ पड़ते हैं। वास्तव में हम देखें तो यह परंपरा धीरे-धीरे और विकसित होती हुई हमारे साहित्य में आती है। छायावाद-काल में तो प्रकृति एक नए रूप, एक नए अंदाज़ में प्रकट होती है। यहां प्रकृति मानव के रूप में खड़ी दिखाई देती है यानि प्रकृति का मानवीकरण कर दिया जाता है।

छायावादी कवियों में निराला ने वसंत को विभिन्न रूपों में अपने काव्य में स्थान दिया। वसंत कवि का प्रिय विषय रहा है। इतना ही नहीं, निराला ने अपने को वसंत का अग्रदूत कहा है–

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि/मैं ही वसंत का अग्रदूत
भाग-1, पृ. 351

वसंत की शोभा, उसका सौंदर्य सभी के मन-प्राण को विभोर कर देता है। उसके आगमन से पूरी प्रकृति में नवीनता का संचार होता है

सखि! वसंत आया/ भरा हर्ष वन के मन, नवोत्कर्ष छाया
भाग-1, पृ. 253

नई आशा, नई उमंग के साथ हमारे मन-प्राण पुलकित होते हैं। निराशा, उदासी को दूर कर वसंत हमारे मन में आशा-उल्लास के भाव भरता है–

वींणा की नव चिर-परिचित तव वाणी सुनकर उठूं तुरंत
समझूं जीवन के पतझड़ में/आया हंसता हुआ वसंत।
भाग-1, पृ. 93

व्यक्ति के जीवन में अनेक व्याधियां घर किए रहती हैं। इनके कारण जीवन भार-स्वरूप लगने लगता है। वसंत का हंसता स्वरूप हमारे मन को उत्फुल्ल करता है। नए जागरण की ध्वनि हमें आशान्वित करती है–

नवल प्राण नव गान गगन में/फूटे नवल वृंत पर फूल
भरे जागरण की किरणों से/जग के जीवन के युग फूल
भाग-1, पृ. 191

निराला-काव्य में वासंती-सुषमा का विविध स्वरूप हमारे सामने दिखाई पड़ता है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' की नायिका वासंती-निशा में ही तो सोई थी। वसंत का मादक वातावरण उसे गहरी निद्रा में डुबो देता है–

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल तनु तरुनी-जुही की कली
दृग बंद किय; शिथिल-पत्रांक में/ वासंती निशा थी।
रच. 1. पृ. 41

विभिन्न प्रकार के फूलों की सुरभि से वातावरण मह-मह कर उठता है। कोयल की कूक, भौंरों का गुंजन सभी वसंत की पहचान बनकर आते हैं। निराला ने भी विद्यापति की तरह वसंत-रूपी राजा की पूरी अभ्यर्थना की है। राजा के स्वागत में पूरी प्रकृति तैयार खड़ी है। राजा के आगमन पर आम-मंजरियों का मुकुट तैयार है–

मंजरियों के मुकुटों में/नव नीलम आम-दलों के
जोड़ों मंजुल घड़ियों में/ ऋतुपति को पहनाने को
झुक डालों की लड़ियों को। भाग-1, पृ. 189

छायावादीकाव्य में कल्पना की बहुत प्रधानता रही है। कल्पना-लोक में विचरण करता निराला का कवि-मन जिस सुखद अनुभूति में डूबता है वहां वसंत का स्वर्णिम, सुगंधित, दिव्य रूप उसे आह्लादित करता है। ऐसी अनुभूति में डूबकर ही उसकी रचना-प्रक्रिया आगे बढ़े ऐसी कवि की कामना है–

सिहर उठे पल्लव के दल, नव अंग;
बहे सुप्त परिमल की मृदुल तरंग/जागे जीवन की नवज्योति अमंद
हिले वसंत-समीर-स्पर्श से/ वसन तुम्हारा धानी।
भाग-1, पृ. 218

कल्पना ने छायावादी कवियों को प्रकृति के मानवीकरण में बहुत सहायता की है। वासंती-सुषमा से भरी हुई धरा युवती के रूप में खिली हुई दिखाई देती है। वसंत में धरा का अंग-अंग सौंदर्य से पूरित रहने के कारण उसकी प्रसन्नता छलकी पड़ती है। धरा का यह सौंदर्य स्वर्ग की सुषमा से टक्कर लेने को आतुर है। वास्तव में स्वर्ग कहीं और नहीं वरण वासंती-सुषमा में इसी पृथ्वी पर है–

युवती धरा यह था भरा वसंत-काल,
हरे भरे स्तनों पर पड़ी कलियों की माल,
सौरभ से दिक्कुमारियों का मन सींच कर
बहता है पवन प्रसन्न तन खींच कर।
पृथ्वी स्वर्ग से ज्यों कर रही होड़ निष्काम
... ...
बही हवा नर्गिस की, मंद छा गई सुगंध,
धन्य, स्वर्ग यही कह किए मैंने दृग बंद। भाग-1, पृ. 265

वसंत की मृदुता, कोमलता कवि को सम्मोहित-सी करती है। ऐसी ही मन-स्थिति में डूबा निराला का कवि-मन 'बहू' की तुलना वसंत की लता से करता है–

वह नव वसंत की किसलय-कोमल लता
किसी विटप के आश्रय में मुकुलिता
किंतु अवनता। भाग-1, पृ. 97

ऐसी 'बहू' के यौवन-उपवन का वसंत तो उसका पति ही है–

यौवन-उपवन का पति वसंत,
है वही प्रेम उसका अनंत/ है वही प्रेम का एक अंत। पृ. 97

इतना ही नहीं निराला ने तो अपने समकालीन जयशंकर प्रसाद के कोमल भाव-जगत को दृष्टि-पथ में रखकर उन्हें 'तुम वसंत-से मृदु, सरसी के सुप्त सलिल पर' संबोधित किया। उनकी साहित्यिक उपलब्धियों को रेखांकित करते हुए कहा–

सहज सृजन से भरे लता-द्रुम-किसलय-कलि-दल
जगे जगत के जड़ जल से वासंतिक उत्पल।
'आदरणीय प्रसादजी के प्रति'। भाग-2, पृ. 45

निराला के वसंत-वर्णन की विविधता हमें अचंभित करती है। पतझड़ के प्रहार से प्रकृति त्रस्त रहती है। प्रकृति का निरावरण रूप उसके तप-त्याग की सूचना देता है लेकिन वसंत के आगमन के साथ ही वासंती परिधान में लिपटी प्रकृति की ठूंठ डाल भी उत्फुल्ल हो उठती है। उसके अंतर के आह्लाद का परिणाम है कि वह सृष्टि को भी अपने मीठे फल से तृप्त करती है–

रूखी री यह डाल, वसन वासंती लेगी।
... ...
मधु-व्रत में रत वधू मधुर-फल,
देगी जग को स्वाद-तोष-दल/ गरलामृत शिव आशुतोष-बल
विश्व सकल लेगी/ वसन वासंती लेगी भाग-1, पृ. 227

वसंत अपने आगमन की सूचना भौंरों के माध्यम से भेजता है। भौंरे मानो वसंत के दूत हैं–दूत, अलि, ऋतुपति के आए/फूट हरित पत्रों के उर से स्वर-सप्तक छाए। भाग-1, पृ. 197

यौवन, उल्लास का प्रतीक वसंत स्वयं यौवन की मस्ती में डूबा हुआ नदी की सैर को निकल पड़ा है। नदी में नहाती हुई युवती का सौंदर्य उसे अभिभूत करता है। दूर से ही उसके सौंदर्य-रस का पान करता हुआ युवक-वसंत अपनी अभ्यर्थना के दो फूल उसे चुपचाप समर्पित कर देता है–

नव वसंत करता था वन की सैर/जब किसी क्षीण कटि-तटनी के तट पर/तरुनी ने रक्खे थे अपने पैर
... ...
मूर्छित वसंत पत्रों पर :
तरु से वृतच्युत कुछ फूल/ गिरे उस तरुनी के चरणों पर।
भाग-1, पृ. 381

ऐसे वसंत की ओर हमारी दृष्टि न जाए, अपने को हम वासंतिक भावों से न भरें तो हमारा जीवन व्यर्थ है, वसंत अपनी उपस्थिति से हमें बहुत कुछ सीखने का अवसर उपस्थित करता है। दुख-तकलीफ़, अभाव ही सिर्फ़ ज़िंदगी का यथार्थ नहीं है, उमंग, उल्लास, आशा, मस्ती भी ज़िंदगी के सच हैं। अच्छा तो यह है कि अभाव में भी मुस्कुराने के महत्व को हम समझें, दुःख में भी आशा के छोर को हाथ से छूटने न दें अन्यथा, निराला के शब्दों में कहना होगा–

सुमन भर न लिए/ सखी, वसंत गया। भाग-1, पृ. 155

संपर्क : द्वारा अशोक कुमार, गुदरी बाहरी मोड़, छपरा-841301 (बिहार)

हमारे नए प्रकाशन



चीं चीं और चूं चूं (बाल भारती कथा संकलन)
सं. प्रकाश मनु, (पेपर बैक),
पृ. 160, मूल्य : 190 रुपये
ISBN : 978-81-230-1926-0



उत्तर भारत की लोककथाएं
ले. शीला पांडे, (पेपर बैक),
पृ. 62, मूल्य : 75 रुपये
ISBN : 978-81-230-1876-8



भारतीय बाघ
ले. नरेश चन्द्र मधवाल, (पेपर बैक),
पृ. 84, मूल्य : 105 रुपये
ISBN : 978-81-230-1882-9



उपेन्द्रनाथ अश्क : जीवन और सृजन
ले. से. रा. यात्री, (पेपरबैक)
पृ. 279, मूल्य : 160 रुपये
ISBN : 978-81-230-1837-9



Press in the North-East
Author : G.P. Pandey
Pages : 171, Rs. : 145
ISBN : 978-81-230-1840-9

पुनर्मुद्रण



रामधारी सिंह 'दिनकर' : व्यक्तित्व और कृतित्व
ले. खगेन्द्र ठाकुर, पृ. 198, मूल्य : 160 रुपये (पेपर बैक), 200 रुपये (हार्डबाउंड)
ISBN : 978-81-230-1544-6



हंसी हंसी में
ले. कुलदीप तलवार
पृ. 28, मूल्य : 40 रुपये (पेपर बैक),
ISBN : 978-81-230-1942-0



शमशेर बहादुर सिंह
संकलन, (पेपर बैक),
पृ. 139, मूल्य : 95 रुपये
ISBN : 978-81-230-1796-9

ललित निबंध

बसे सो वसंत

पंकज परिमल

'वसंत' को क्या अर्थ दूं, क्या शब्द ? इस आर्ष संकल्प के बावजूद, 'जीवेम शरदः शतम्। पश्येम शरदः शतम्' हम देखते-देखते और जीते-जीते, जीते हैं वसंत के लिए। हम मुंह से न कहें तो भी 'कुर्वन्नेव कर्माणि जीविषेच्छत शतं समा', सौ अर्थात् क्या ? स्पष्ट रूप से शरद का नाम तो ले लिया, पर वसंत का नाम लेने में एक सहज संकोच है। पता नहीं, कोई इस कामना का क्या अर्थ लगा ले ! कर्म करते हुए ही हम सौ (वर्ष) जिएं, हाथ-पैर चलने योग्य न रहें और पराश्रित हो जाएं, ऐसे जीवन का कोई हर्ष हमें न मिले—सृजनहित अनवरत तत्पर, हम रहें सप्रयास/शत शरद देना न देना भले शत मधुमास।

जीवन के आख़िरी वर्ष में भी अगर हाथ-पैर चलने योग्य बने रहें, तो दादी-नानी की कामना ज़रूर यह रहती है कि इस सर्दी के आगमन से पूर्व वह पोते-पोतियों, धेवते-धेवतियों के लिए अपने हाथों स्नेह की उष्ण ऊन के ताने-बाने से नए मोज़े या नए स्वेटर बना दें, उनके लिए भी जो उनकी गोदियों में खेलकर बड़े हुए या अभी तक खेल रहे हैं, उनके लिए भी जिनके आने की आहट-भर सुन पड़ी है। ऐसा ताना-बाना बुनने की आकांक्षा रहती है, जो उनके भविष्य के जीवन को मधुर स्मृतियों के उलझड़े में हमेशा उलझाए रखे। यह है 'जीवेम् शरदः शतम्'—सौवां वसंत छूट जाए तो छूट जाए पर कार्य-सक्षमता की सौवीं ऋतु ज़रूर देना प्रभु!

शरद् शिशिर की ठिठुरन का संकल्पबद्ध स्वागत है और वसंत सरदी के सर्ग की पूर्णाहुति। इसी वसंत की कामना में हमारे प्राण बसते हैं, हम मुंह से कहें या न कहें। उस वोग्यित भरी कथा का अंतिम शंख कब बजे, कब इसका पाठ-भोग पड़े। शिशिर में हमेशा एक दुविधा है—प्रभु! यह पूस की रात कैसे कटेगी ? और जब मेथी-बथुवा छाते-संवारते ये पूस के दिन-रात कट ही गए तो वसंत तो देख लेने दो। बाबा ने अपनी उखड़ती हुई सांसों को संभाल रखा पूरे शिशिर-भर, अबके वसंत में तो पोते का लग्न जुड़ जाए, जीवन की माला में एक पीढ़ी का मनका और जोड़ देना, प्रभु! पूरी ठंड में संचित आम-दोष 'कफ़' जब सूर्य के ज़रा-ज़रा ताप के बढ़ने के साथ पिघलकर बह ही गया तो वसंत को आमोद-प्रमोद की पीठिका रचनी ही है। आयुर्वेद में वसंत का ऋतु-वैशिष्ट्य बताते हुए लिखा है—'वसंते निचितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः'। आयुर्वेद का कथन है कि जब सूर्य का बल क्षीण पड़ जाए, तो मनुष्य का देह-बल बढ़ने लगता है। देह-बल बढ़े और मनोबल न बढ़े, ऐसा कैसे संभव है? ख़ास तौर पर जब सूर्य का बल बढ़ने की दस्तक पुनः सुनाई देने को हो, तो इस फिसलते हुए काल को क्यों न दोनों बाजुओं में थाम लें ? दूषित कफ के बह जाने से जब वसंत में देह-मन सब स्रोतों के निर्माल्य के फलस्वरूप हल्के हो लिए हैं तो भोग का भार उठ ही जाएगा—उनसे भी जिनकी रगों में यौवन का नया रक्त बह रहा है, और न्यूनाधिक उनसे भी, जिनके दाढ़-दांत हिल गए और आंतें जवाब दे गई हैं--ज़रा से गरिष्ट अन्न का मोह उनसे भी नहीं छूटता। अभी सूर्य का बल जो घटा हुआ है।

चलें, इस वैद्यकीय पंचकर्म की स्रोत-शुद्धि की चर्चा के बाद, उसी वसंत पर आ जाऊं जो हमारी जागृति और स्वप्न में, देह और मन में कहे-अनकहे बसता है। ग्रीष्म का विषण्ण कर देने वाला ताप नहीं, शिशिर की अकर्मण्यता वाली रज़ाई नहीं, अब बता, तेरी रज़ा क्या है और मेरी रज़ा क्या है ? कहो तो इसी वसंत में आपसी रज़ामंदी का कोई मधुरिम प्रसंग रच लें ?

कामिनी के पदाघात से कदम्ब फूलता है, यह लोकश्रुति-भर है, पर वसंत में क्य फूलता है, यही किसे पता! अखरोट, सेव, बादाम, खुबानी, आड़ू के पत्तोंरहित वृक्षों पर वसंत पहले सुंदर, नाज़ुक पंखड़ियों वाले फूल देता है, उसके बाद पत्तियां। इतनी लंबी पत्तोंरहित-देह ऋतु-तपस्या के बाद, झर चुके पीले पातों से दोनों हाथ ख़ाली हो जाने के बाद, अगर सीधे कहीं पुष्पित उल्लास की चिट्ठी आ जाए तो मज़ा आ जाए। पत्तों को तो आना ही है। मैंने किसी निबंध में लिखा—'पुष्पित-पल्लवित'। सृष्टि का आद्य-क्रम तो है 'पल्लवित-पुष्पित' होने का, पर मेरी स्मृति में वह तथ्य था जब पलाश और सेमल के रक्ताभ पुष्प पत्तों की प्रतीक्षा के बग़ैर ही अपनी उपस्थिति दर्ज करा देते हैं—पैंठ लगी नहीं कि गंठकटे पहले ही पहुंच गए।

जीवन में अकस्मात् उपलब्धियों का पहुंचना ऐसा ही है, जैसे भिखारी के द्वार पर हाथी का बंधा जाना। वसंत भी तो हर किसी के द्वार पर अनुराग का हाथी बांधता फिरता है, उसके द्वार पर भी, जिसमें इसके भरण-पोषण की क्षमता तो क्या, सार-संभाल की भी शक्ति नहीं है लेकिन, इस मुफ़्त के परसाद को कोई नहीं छोड़ना चाहता। पत्तों का क्या, उन्हें तो आना ही आना है। आख़िर इस पुष्पित उल्लास के शेष रह गए प्रतिफल को, आमोद-प्रमोद की गुलाबी रात बीतने के बाद, यौवन और शक्ति की नाज़ुक पंखुरियां के झर जाने के बाद, अपने आंचल की हरित-छाया में कोइ तो पाल-पोसकर संभालने वाला चाहिए। यह वह ऋतु है जो शरीर के शहतूत की सबल, चाहे निर्बल शहतीर पर अपनी स्मृतियों के रेशमी ख़ोल रख जाती है और बदले में पूरा का पूरा शहतूत चाट जाती है जिसमें मिठास न हो और उसे लुटाने की क्षमता न हो, वह क्या रेशमी उपलब्धियों के कीट पालेगा। मणि-माणिक्य और मोती की शोभा अहि-गिरि-गज के सिर पर नहीं है, उसे तो राजा का मुकुट या तरुणी का तन चाहिए।

समुद्र के पास 14 तो महार्घ रत्न ही थे, छोटे-मोटे भी बहुतेरे रहे होंगे, पर फिर भी वह 'रत्नभुज' नहीं था। वसंत 'रत्नगर्भों' का नहीं, 'रत्नभुजों' का समय है। वसंत का प्रमाद, प्रणय और अनुराग का हाथी हरेक कोई अपने खूंटे क्या खाकर बांधेगा, पर वर्ष-भर की तीरथ-तपस्या का प्रसाद लाए ही हो ऋतुराज तो सादर-प्रणाम। हमारे देह और मन की पीठिका पर बिराजो।

वसंत बसता तो है मन-प्राण में, पर क्या कहूं? जनवरी के आख़िरी चरण से मार्च के दूसरे-तीसरे चरण तक फैलते-पसरते मेहमान, क्या लोगे? गाजर का हलुवा या तिल के लड्डू? वसंत की मोती-भरी परात छलक ही गई है तो क्या करूं, इस अनुग्रह की मार खाकर रोऊं या हंसूं? जनवरी में नया वर्ष तो आया था, दूसरे सप्ताह तक तो फोन आते रहे, काग़ज़ों पर ठिठुरते हाथों से वर्ष-तिथि अंकित होने में ग़लती होती रही। पहले कार्ड भेजने का युग था सो गया। पांच से पचास रुपये तक का कार्ड और डाकख़र्च अलग। 'एस.एम.एस.' और 'फोन-कॉल' ने बचा लिया। कार्ड तो डाक में भी हज़म हो जाते थे तो कोई शिकायत नहीं करता था, पर अब एक महत्त्वपूर्ण शिकायन कांटे की तरह कलेजा चीर गई—फोन काल के पैसे नहीं थे तो 'मैसेज' ही

भेज देते! प्रभुजी, गुलदाना नहीं था, तो चरणामृत-तुलसीदल ही मिल जाता या उसकी भी हैसियत जाती रही ?

पूस की रात अभी बीती नहीं और वसंत की दुकान लगी नहीं पर बीमा कंपनियों के एजेंट के फोन पर फोन आने शुरू हो जाते हैं—लाइफ एश्योर, हैल्थ एश्योर, मेडिक्लेम की नई-नई स्कीमों के साथ—अरे सर! यह सर्दी तो मकई की रोटी और चने का साग खा-पचाकर बिता दीं पर क्या ज़रूरी है कि आप अगले साल भी ज़िंदा ही रहेंगे? एक एजेंट तो बार-बार दुहरा रही थी—'सर, भगवान् न करे कुछ हो गया तो...' जी में आया कि सामने होती तो और कुछ नहीं, यह फोन ही उसके सिर पर दे मारता। एक गांव में गड़रियों के मकान से लगी हुई दुकानों में मैंने कभी एक क्लीनिक खोला था। बाहर बरामदे में एक बूढ़ा उखड़ी हुई सांसों के साथ-साथ भेड़ का ऊन साफ़ करता रहता—'कुर्वन्नेव कर्माणि...' उसे पता नहीं था वसंत का, वह तो 'शत शरद' जी रहा था। उसकी पुत्रवधुएं निर्लज्ज हंसी हंसते हुए मुझे पूछती थीं—'डॉक्टर जी, बता दो हमारा बुड्ढा अबके कात्तक में सरक जागा कि नहीं? निःसंदेह यह सिर्फ परिहास था, बूढ़े की मरण-कामना नहीं, पर जिजीविषा बहुत बड़ी होती है। क्लीनिक उसी वर्ष छोड़ दिया और बाद के तीन-चार सालों में यदा-कदा जाने के बाद, हर शरद-शिशिर के बाद, हर वसंत में मुझे वह जीर्ण-जर्जर बूढ़ा किसी-न-किसी कर्म में निरत मिला। सारे कार्तिकों का मारण-मोहन व्यर्थ हो गया। यह अपनी पॉलिसी बेच रही है या मेरी मरण-कामना कर रही है ? शायद उसे आश्चर्य है कि मैं इस शिशिर में बच कैसे गया। कार्ड तो मैंने सोचा था कि 'नव-वर्ष की शुभकामना' का अधिकारी को दे आऊं, फिर रुक गया? मेरे पसंद किए हुए कार्ड की भावना कौन पढ़ेगा? कार्ड को तो उठाकर डस्टबिन में फेंक देते हैं। इस प्रणयातुर समय में, इस अभिसार-रचना के समय में प्रेम के शाठी-चावल कौन बोएगा? बोए भी और फ़सल नष्ट हो गई तो? इस वसंत में किसी के पास इतना फ़ालतू का समय नहीं है। पहले बोओ और भर पानी में कमर झुकाए-झुकाए रोपणी करो—इतना देह-दर्द कौन मोल ले। इस वसंत में तो प्रणय-अभिसार से, भोग और विलास से ही काम चल जाए तो बहुत है। 364 दिन युद्ध-मुद्राओं के और एक दिन प्रणयाभिसार का—आ जा, इक दिन प्यार करें साथी/ दिवस तीन सौ चौंसठ लड़ने के। है तो, इस वसंत में एक वेलेंटाइन दिवस अर्थात् 'वैल' हमारा प्रणय-समझौता 'टाई'—अप हो जाए, है 'न'! मैं 'वेलेंटाइन' का यह संधि-विच्छेद उस समय कर रहा हूं, जब लोग मिथ्या समझौतों के गुलाब महकाने और होटल-रेस्तराओं के अंतरंग कोने घेरने और वसंत मनाने की तैयारियां कर रहे हैं, है न कितनी मूर्खतापूर्ण बात?

कार्तिक में हमने ज़ोर-शोर से लक्ष्मी-आराधन किया। धरती को जितना आलोक दिया, उससे कहीं ज़्यादा दमघोटू वातास पैदा किया, संशय और भ्रम की चर्चाओं का बाज़ार गर्म किया, धुआं फैलाया। हमारी आराधना के जो सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द थे, वे थे—तुम बिन यज्ञ न होवे, वस्त्र न हो पाता/खान-पान का वैभव, सब तुमसे आता।। जितनी मेहनत सारे श्रीसूक्त में लक्ष्मी के आह्वान की, उतनी ही भूख-प्यास रूपी दरिद्रता के नाश की भी—क्षुत्पिपासमलां ज्येष्ठां डलक्ष्मीं नाशयाम्यऽहम् ।अभूतिम् असमृद्धिं च सर्वा निर्णुद् मे गृहात्।। पर यह असमृद्धि रूपी दरिद्रता कैसे जाए ? कंपनियों का सारे वर्ष-भर की कमाई का लक्ष्य छूटा जा रहा है। वित्तीय वर्ष बीत रहा है और बैंकों को लोन के फंद में मछली फांसने की लगी हुई है—कब आओगे फंद में, कब लोगे प्रभु लोन/छलनाएं रचते नई, ललनाओं के फोन। वसंत क्या खोखलदास रहकर मनाओगे? हम बैठे तो हैं तैयार लोन बांटने को, लो न! इस फरवरी में भी नहीं लिया लो कब लोगे, वसंत का मादक काल बीत जाएगा, तब! तब किसकी वेणी में मोगरे की लड़ी बांधोगे, जब वसंत में तुम्हारे नीरस रंग-ढंग से उकताकर तुम्हारी वेलेंटाइन छोड़कर चली जाएगी। ख़ाली-पीली धंधा क्यों खोटी करते हो। ख़ाली-पीली ऐसे प्रेम-राग का मूल्य क्या ? गाल बजाने और बंसुरी फूंकने से किसका पेट भरा है? कंपनियों ने इस वसंत से पहले ही लक्ष्यपूर्ति जन्मदिन की चंदा-उगाही शुरू कर दी है। हम भी बचे-खुचे वसंत के प्रेम-राग की धुन लपक लेना चाहते हैं। भोग के साथ डिस्काउंट में या फ्री कुछ भी मिले, कटु अनुभव ही सही, वह भी लेने को कटिबद्ध। अगले साल इस वसंत की हाट में दिया-बत्ती के समय हम न हुए तो इस वसंत के पतुरिया-नाच के क्षणिक आनंद को क्यों छोड़ें। रेलवे वालों ने बेटिकट यात्री धड़ाधड़ धरने शुरू कर दिए हैं। परिवहन विभाग ने चालान और बे-चालान—दोनों वसूलने शुरू कर दिए हैं। व्यापार-बिक्री कर विभाग की चैक-पोस्टों पर चुस्ती-फुर्ती बढ़ गई है—वसंत में नया खून जो तैयार हो गया है। फागुन की फगुनाहट तथा सुंदर वस्त्रों, प्रणय-निवेदन और खान-पान के वैभव में एक ही अर्थ की कामना छिपी है, वह इस जाते हुए वित्तीय वर्ष में पूरी कर लें—हक की, हराम की, कर्ज़ की, उधार की, हर तरह की लक्ष्मी को घर ले आओ। संस्कृति की सेल में अपसंस्कृति भी फ्री में उठाकर ले आने को तैयार रहो। विद्यालयों को भी फरवरी में ही फरवरी और मार्च—दोनों महीनों की फीस वसूल लेनी है और इस तरह अपना वसंत मनाना है। वैसे भी विद्या की अधिष्ठात्री को तो वसंत में ही अपना जन्मदिन मनाना होता है। जितनी बटोर-विद्या वसंत में उपजती है, इतनी साल-भर में भी नहीं उपजती। वित्तीय वर्ष के अंत में मनुष्य की बुद्धि तेज़ी से काम करती है। क्या स्याह-सफ़ेद करके टैक्स बचाना है और वर्ष के बचे हुए और बिल्कुल वित्तीय वर्ष के अंत में आवंटित बजट को कैसे ठिकाने लगाना है, हर मामले में। विद्यालय वाले सोचते हैं कि अगर मार्च में अभिभावक टैक्स की गणना में उलझकर खल्लास होने का ढोंग भरने लगें तो उनकी कमाई तो खटाई में पड़ जाएगी, सो फरवरी में ही बटोर लो, विद्या की देवी इस अग्रिम उगाही से खुश ही होंगी। सन् 2008 में वसंत पंचमी वेलेंटाइन से तीन दिन पूर्व पड़ गई। सो हुआ यह कि सरस्वती-पूजन के लिए बनी हुई 'प्लास्टर ऑफ पेरिस' की प्रतिमाएं, सड़कों के किनारे अनबिकी ही धूल फांकती रहीं। वेलेंटाइन की मस्ती में डूबने के समय में किसी ने उनका आह्वान ही नहीं किया, तो पूजन-विसर्जन क्या करता? मुझे सरस्वती-प्रतिमाओं को सड़क की धूल फांकते देखकर क्षोभ भी हुआ, कुछ संतुष्टि भी हुई कि अनमोल सरस्वती बिकने की ज़िल्लत से भी बच गई और मतलब निकल जाने पर नदी के मलिन जल में धकियाए जाने के कष्ट से भी। आजकल की विद्या की काशियों के नव-स्नातकों को देश-विदेश में भारी-भरकम पैकेज का आदर-सत्कार तब तक मिलता रहता है जब तक वे उनके काम के आदमी रहते हैं। सिर-माथे बिठाने में भी देर नहीं और मतलब निकल जाने पर छंटनी-विसर्जन में भी लेश-भर दुविधा नहीं।

वसंत भी इस सरस्वती-पूजन की प्रकृति और नियति से बंधा है। प्रणय और अभिसार का बुख़ार देह-मन को व्यापे और प्रेम के रूप में परिपक्व होने के पूर्व ही कब साथ छोड़ दे, कौन जाने ? उतरते वसंत तक शनैः शनैः देह-मन में उतरते-व्यापते अनंग की पदचारणा के स्मृति-फलस्वरूप चित्त पर बना प्रेमानुराग का भित्तिचित्र, चैत्र की चैती कवोष्ण हवाओं और गुनगुनाती धूप की मीठी मार से खुद को क्षतिग्रस्त होने से बचते-बचाते हुए भी किस निष्ठुर वैशाख की विशिष्ट-दृष्टि की भेंट चढ़ जाए, यह भी किसे पता? घर-घर पहुंचे सचित्र मनोरंजन के इलैक्ट्रॉनिक उपादानों की कृपा से सिनेमाघरों का तो काल लगभग गया, मैं इस वसंत में क्या याद करूं? मुझे तो वह सीटी तक याद नहीं आती जो सिनेमाघर में श्लेषपूर्ण संवाद के अनंतर गूंज जाती थी। ❑

संपर्क : ए-129, 'प्रवाल', शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II, साहिबाबाद, गाज़ियाबाद-201005

रुत वसंत की, दिन फाल्गुन के

रामशरण युयुत्सु

भारतीय संस्कृति में व्रत, पर्व एवं उत्सवों की विशेष प्रतिष्ठा है। भारत ही एक ऐसा देश है जहां भूमंडल की सभी ऋतुएं यहां होती हैं। भारत में फाल्गुन और चैत्र के महीने वसंत का समय माने जाते हैं। उधर शिशिर की निष्क्रियता समाप्त होती है तो वसंत का शुभागमन होता है। पुरातन साहित्य में वसंत का दर्शन 'ऋग्वेद' से ही हो जाता है जिसमें सूर्य को ऋतुओं का नियामक कहते हुए षट्ऋतुओं का वर्णन है–

पंच पाद पितरं द्वादशाकृति दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।

अथ में अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्।। ऋग्वेद-1.164

किंतु इसमें हेमंत तथा शिशिर को एकीकृत कर दिया गया है। यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में देवताओं द्वारा विरचित सृष्टि-यज्ञ का बहुत ही रोचक वर्णन आता है। कहा गया है कि जब यह यज्ञ आरंभ किया गया तो सबको यह जानने की भरसक उत्सुकता हुई कि यज्ञ में घृत क्या है, समिधा कैसी है और आहुति देने के वास्ते हवि साकल्य क्या है? उसी सूक्त के अगले मंत्र में इन जिज्ञासाओं का उत्तर दिया गया है–

'वसंतो स्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः।'

वह वसंत ऋतु थी घृत, ग्रीष्म थी समिधा और शरद् ऋतु हविष्यान्न। बात तो मौसम की ही हो रही है और वह भी वसंत की; बल्कि वसंत के उत्कर्ष (यौवन) की, एक कवि ने इसे अपने सलीके से बड़े आकर्षक अंदाज़ से कहा है–

'रुत वसंत की दिन फाल्गुन के/मधु वेला यौवन की।'

वसंत का यज्ञ चक्र में क्या मुकाम है?

ध्यानपूर्वक सोचें कि वसंत का इतना महत्व न होता तो स्वयं योगिराज श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में निज विश्वरूप का वर्णन करते हुए 'ऋतुनां कुसुमाकरः' कहकर खुद को ऋतुओं में वसंत क्यों बताते? संस्कृत के कवियों में वसंत वर्णन की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। किसी के महाकाव्य में इस प्रकार का वर्णन न रहने पर उस कवि के काव्यत्व में हीनता मानी जाती है–अस्तु।

वसंत ऋतु किस अंदाज़ में एक-एक कदम रखती हुई आती है, इसका मनमोहक वर्णन एक कवि ने इस तरह किया है–

'कुसुम जन्म ततो नवपल्लवाः ततदु षट्पदकोकिल कूजितम।
इति यथाक्रम मा विर भून्मधुः द्रुमवती मवतीर्य वनस्थलीमु।।'

अर्थात् पहले तो पुष्प का जन्म हुआ, फिर नई-नई कोंपले आईं फिर भौंरे गूंजने लगे... और यूं क्रमपूर्वक वसंत ऋतु (मौसमे बहार संपूर्ण) वनस्थली पर उतर आई।

श्रीमद्भगवद् गीता में रसाधार श्रीकृष्ण ने स्वयं को चंद्रमा, मन, कामदेव, वसंत, प्रजापति आदि का पर्याय कहा है। इसमें दो मत नहीं हैं कि वसंत नटखट, नटवर, नटनागर, श्यामवर्णी कृष्ण जैसा शृंगार प्रवण है, नृत्य-संगीत में पारंगत पुष्प-सुरभि से मत्त होने वाला, समस्त जड़-चेतन को उन्मादित-संतप्त करने वाला तथा अनंग के निसर्ग स्वरूप वाला है जो पुष्प मंजरियों तथा मस्त बयारों में पल्लवित होता है। वसंत में चतुर्दिक उजास की दीप्ति, उत्कंठित रहना है, नई-नई अभिलाषाएं लोगों के मन में जन्म लेती हैं और चारों तरफ मधुमय वातावरण रहता है, इसी से इसे 'मधुऋतु' कहा जाता है। मधु एक रस विशेष है जो मस्त चेतन तथा जड़ को मदमस्त कर देता है और वसंत ऋतु में मधुरस की प्रधानता हो जाती है–

अथर्ववेद में भी वसंत का उल्लेख है–

ग्रीष्मस्तेभूमे' वर्षाणि शरद धर्मन्तः शिशिरो वसंतः
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहो रात्रे पृथिवी नो दुहातां।।

–अथर्ववेद, पृथ्वीसूक्त 12.1-36

कालांतर में रामायण, महाभारत के साथ-साथ कालिदास, हर्ष, माघ, भारवि, जयदेव आदि में भी वसंत की महिमा का सुंदर वर्णन मिलता है। जहां कालिदास के ऋतु संहार (6/27) में वसंत को रम्य, सर्वप्रिय, मनोहर कहा गया है–

सुखा प्रदोषा दिवाशश्च रम्याः सर्व प्रियं चारुतरं वसंते।

वहीं जयदेव के गीत गोविंदम में विरहियों को दुःख देने वाले वसंत का उल्लेख है–विहरति हरिरिह सरस वसंते। नृत्यलियुवती जनेन समंसखी विरहजनस्य दुरन्ते।।

ऋग्वैदिक मंत्रद्रष्टा तो सभी को वसंत में सुखी रहने की कामना करते

वसंत का इतना महत्व न होता तो स्वयं योगिराज श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में निज विश्वरूप का वर्णन करते हुए 'ऋतुनां कुसुमाकरः' कहकर खुद को ऋतुओं में वसंत क्यों बताते? संस्कृत के कवियों में वसंत वर्णन की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। किसी के महाकाव्य में इस प्रकार का वर्णन न रहने पर उस कवि के काव्यत्व में हीनता मानी जाती है।

हुए कहते हैं कि वसंत में सर्वत्र सुखदायी पवन मंद-मंद बहे, नदियों का जल मधुर हो, रसपूर्ण हो तथा पृथ्वी और अंतरिक्ष हमें सुख प्रदान करें–

मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धव

प्राचीन काल में इस ऋतु में हमारे देश में 'मदनोत्सव' नामक एक विशेष त्यौहार मनाया जाता था जिसमें वसंत पंचमी को कामदेव तथा रतिपूजन की प्रथा का वर्णन है। मान्यता है कि कामदेव का जन्म भी वसंत पंचमी को ही हुआ है। इसी से इस दिन कामदेव पूजन की परंपरा का उल्लेख भास के नाटक 'चारुदत्त' में मिलता है–वात्स्यायन के 'कामसूत्र' मे भी इसका उल्लेख है तथा इसे 'सुवसंतक-पर्व' कहा गया है। अब भी वसंत पंचमी, होली और रामनवमी के त्यौहार इसी ऋतु में मनाए जाते हैं। वसंत पंचमी के दिन पुरुष वासंती पगड़ियां पहनते हैं और स्त्रियां वासंती साड़ियां तथा दुपट्टे धारण करती हैं। इस दिन मीठा हलवा तथा नमकीन पकौड़े भी वासंती रंग में ही बनाकर खाए जाते हैं। वसंत पंचमी के दिन पतंगबाज़ी भी खूब होती है।

वसंत पंचमी वास्तव में वसंत ऋतु के आगमन पर उद्घाटन समारोह का दिवस है। कामशास्त्र में 'सुवसंतक' नाम उत्सव की चर्चा आती है। 'सरस्वती कण्ठाभरण' में लिखा है कि सुवसंतक वसंतावतार के दिन को कहते हैं। वास्तव में वसंत पंचमी ही वसंतावतार की तिथि है। वसंत पंचमी मां

वीणापाणि सरस्वती की जन्म तिथि है। अतः सारस्वत जन इसे 'श्री पंचमी' भी कहते हैं। 'मात्स्यसूक्त' और 'हरी भक्तिविलास' आदि ग्रंथों में इसी दिन को वसंत का प्रादुर्भाव दिवस माना गया है। इसी दिन ही मदन देवता की प्रथम पूजा का विधान है।

ज्यों ही वसंत ऋतु का शुभागमन होता है चारों ओर जीवन और वातावरण बदल जाता है, जैसे किसी ने जादू फूंक दिया हो। पतझड़ ने जिन पौधों को नग्न बना दिया था, सहद वसंत उन्हें हरे-भरे कपड़ों अर्थात् हरे-हरे पत्तों तथा फूलों से शृंगारित कर देता है। सूनी डालियों की झोली कोमल पत्तियों और फूलों से भर जाती है, जैसे वसंत ने उन्हें उपहार दिया हो। खेतों में जाकर देखें तो दूर-दूर तक झूमती हुई वासंती चुनरी ओढ़े सरसों मन को लुभाती हैं, बागीचों में फूलों का रंगीन सौंदर्य अपनी ओर आकृष्ट करता है। यद्यपि वसंत का ऋतुकाल चैत्र-वैसाख माना जाता है तथापि इसके लक्षणों का प्रारंभ मार्गशीर्ष शुक्ल की पंचमी (वसंत पंचमी) से ही हो जाता है तथा इस दिन से फाल्गुन पूर्णिमा तक वसंत से संबंधित अनेक ऋतु पर्व मनाए जाते हैं।

वसंत ऋतुओं का राजा है। इस ऋतु में सुगंध मिश्रित पवन चलने लगती है। शाखाओं-प्रशाखाओं में नवीन पत्रांकुर शोभा देने लगते हैं। चारों ओर फूल खिलते हैं, आम के वृक्षों पर मंजरिया आच्छादित होती हैं तो कोकिल मधुर कलरव करता है। सांझ सुहावनी और दिन रमणीय होने लगते हैं। इस ऋतु में सभी पदार्थों में मनोहरता आ जाती है।

आयुर्वेद के अनुसार इस ऋतु में भ्रमण करना अत्यंत लाभप्रद होता है। नई कोंपलों की भांति मनुष्य के शरीरों में भी नए रक्त का संचार होता है और भ्रमण करने से मन सारा दिन आनंदित तथा तन स्फूर्ति से भरपूर रहता है। इस ऋतु में आम की मंजरियां खिलती हैं, नए पलाश के फूलों की सुगंधि को चुराने वाली और राह की थकान मिटाने वाली श्रीखंड शैल से आने वाली मलय वायु चलती है। कवि इसी अहसास को शब्द देता है, यही कवि की काव्य-दृष्टि है। वास्तव में वसंत एक राग है। मनुष्य की रागात्मक वृत्ति को उत्तेजित करने के कारण ही वसंत कामदेव का सखा कहलाता है।

सभी ऋतुओं की तुलना में श्रेष्ठ होने के कारण इसे 'ऋतुराज' की पदवी दी जाती है। इसकी महत्ता इस बात से भी सिद्ध होती है कि गीता में श्रीकृष्ण ने वसंत को अपने रूप में ही माना है। 'ऋतुनां कुसुमाकरः' अर्थात् ऋतुओं में फूलों का भंडार वसंत ऋतु मैं हूं। शब्दकोश में भी वसंत का अर्थ 'फूलों का गुच्छा' दर्शाया गया है। वसंत पंचमी के दिन ही श्रीराधा-श्यामसुंदर देव प्राकट्योत्सव-विवाहोत्सव भी माना जाता है। इसी दिन ही विद्या की देवी सरस्वती की पूजा भी की जाती है। भगवती सरस्वती सत्वगुण संपन्न है। वाक, वाणी, गौर, सोमलता, वाग्देवी और वाग्देवता आदि अनेक नाम हैं। ऋग्वेद के 10वें अध्याय के 125वें सूक्त के आठवें मंत्र के अनुसार वाग्देवी सौम्य गुणों की दात्री तथा वसु रुद्रादि देवों की रक्षिका है। ये राष्ट्रीय भावना प्रदान करती है। वागीश्वरी की उपासना करके कवि कुलगुरु कालिदास ने ख्याति पाई। गोस्वामी दास कहते हैं कि देवी गंगा और सरस्वती एक समान ही पवित्रकारिणी है। एक पापहारिणी तो दूसरी अविवेकहारिणी है।

पुनि बंदऊं सारद सुसरिता, जुग पुनीत मनोहर चरिता।
मज्जन पान पाप हर एका, कहत सुनत एक हर अविवेका।।

इतिहास प्रसंग के अनुसार इसी दिन ही वीर बालक हकीकतराय ने अपने धर्म पर दृढ़ रहते हुए अपना बलिदान दिया था। वीर हकीकत ने अपने हिंदू धर्म का परित्याग न करके अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया।

महाकवि कालिदास (विरचित) 'ऋतु-संहार' में कहते हैं—इस ऋतु में बौरे आम के वृक्षों की सुगंध से सुगंधित वायु ने धीरज धरने वाली कामिनियों के हृदयों में भी खलबली मचा दी है। मदोन्मत्त कोकिलों की कुहुक और भौरों के गुंजार से चारों दिशाएं भर गई हैं। आम के रस से मतवाला हुआ कोकिल सादर अपनी प्यारी का मुख चूम रहा है। गूंजता हुआ भौंरा भी कमल पर बैठ कर अपनी प्यारी की खुशामद (मनुहार) कर रहा है। प्रेम, उमंग और उत्साह का राग है। वसंत एक भाव दशा है। यह एक पवित्र पर्व है। सुगंध है, जीवनधारा है, जीवन दर्शन है, एक महान लौकिक पर्व है। वसंत संवेदनशील समाज के लिए संजीवनी है। हर्ष के 'रत्नावली' नाटक में वसंत का जीवंत वर्णन दर्शनीय है। इसका संपूर्ण प्रथम अंक कौशांबी में संपन्न वसंतोत्सव से परिपूर्ण है। इसमें विदूषक का नाम भी वसंतक/वसंत रखा गया है।

कालिदास कृत 'शृंगार-तिलक' में कहा गया है कि कोयल कुहुकती हो, लताएं फूल रही हों, चांदनी छिटक रही हो, श्रेष्ठ कवि अपनी रसीली कविताएं सुनाते हों और भोग-विलास से थककर प्रियतम अपनी प्राण प्यारी के पास आराम कर रहे हों, चैत के महीने की रातों में जिन्हें यह सब उपलब्ध हों, वे निश्चय ही बड़े भाग्यवान हैं। भारतीय साहित्य में वसंत को शृंगार रस व भक्ति रस में अनेक कवियों ने अपने-अपने तरीके से अपनी रचनाओं में सृजित किया है। फिर चाहे वे संस्कृति के महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हों, प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत हों या फिर केदारनाथ सिंह व अन्य महाकविगण। वस्तुतः साहित्य ने ही वसंत के मधुरम सौंदर्य का बोध कराया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'कबीर' नामक ग्रंथ के 15वें पद में वसंत अति आकर्षक बन पड़ा है—

जहां खेलत बसंत राज। जहां अनहद बाजा बजे बाज।
चहुदिसि जोति की बहे धार। विरलाजन कोई उतरे पार।।

वसंत ऋतु का मानवीकरण सुमित्रानंदन पंत ने इस तरह किया है—

'चंचल पग दीप शिखा के घर, गृह मग वन में आया वसंत
सुलगा फाल्गुन का सूनापन, सौंदर्य दिशाओं में अनंत।'

कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जानते थे कि मधुमय ऋतु हमेशा तो रहने वाली नहीं, फिर भी वसंत उन्हें बेहद प्रिय था। अतः विदा वेला पर महाकवि अधूरे अरमानों की व्यथा-कथा कुछ इस अंदाज में बयान करते हैं—

सुमन भर न लिए/सखि वसंत गया/ हर्ष हरण नहीं/निर्दय क्या?
विवश नयनोन्माद/वश हसकर तभी/देखते ही देखते/री मैं थकी/
अलिप्त पग मद में/ ठगी सी रह गई/ मुकुल व्याकुल श्री/
सुरभि यह कह गई/ सुमन भर न लिए/ सखि वसंत गया।

हर्ष के 'रत्नावली' नाटक में वसंत का जीवंत वर्णन दर्शनीय है। इसका संपूर्ण प्रथम अंक कौशांबी में संपन्न वसंतोत्सव से परिपूर्ण है। इसमें विदूषक का नाम भी वसंतक/वसंत रखा गया है। कविवर विद्यापति ने भी वसंत ऋतु की शोभा एवं महत्व को बखानते हुए कहा है—

जाहिं देस पिक मधुकर न गुजर
कुसुमित नहिं कानने छव ऋतु मास
भेद नहि जानिए सहज हि अवल मदने।

नूतनता की स्थापना करने वाली और सृजन की दूती इस वसंत ऋतु के गीत सभी भाषाओं के कवियों ने गाए हैं। यह ऋतु निराशा में आशा का संचार करने वाली तथा जीवन की प्रेरणा देने वाली भी है—

फूले चाहें दिशआम, भई सुगंधित ठौर सब।
मधु-मधु पी अलिग्राम, मत्तभये झूमत फिरें। ❑

संपर्क : श्री अंगिरा शोध संस्थान, 419/3, शांति नगर, जींद-126102 (हरियाणा)

भावनाओं की उड़ान को पंख देते पक्षी

आम जन-जीवन में पक्षियों का बहुत महत्व है। कई पक्षियों के साथ हमारा संवेदनात्मक संबंध रहा है। कुछ की बोली हमें प्रभावित करती है तो कुछ के रंग एवं बनावट आकर्षित करते हैं। कई पक्षियों का चरित्र ख़ास वर्ग या ख़ास व्यक्ति-विशेष के चरित्र के क़रीब होते हैं। अतएव जब कभी बातें होती हैं या कोई प्रसंग होता है तो उसकी तुलना उस पक्षी-विशेष से कर देते हैं। इसीलिए भारतीय चित्रकला में कई पक्षियों को प्रतीकात्मक रूप में दर्शाया गया है या किसी ख़ास दृश्य को उभारने के लिए इनका प्रयोग हुआ है, बता रहे हैं **भुनेश्वर भास्कर**

संवेदनात्मक रूप से आहत होने के पश्चात दर्द, पीड़ा, कुंठा, त्रासदी से भरे बेचैन मन लिए कोई व्यक्ति मन ही मन हृदय के ज़ख़्म को सहलाता होगा तो स्वाभाविक है कि उसके बंद होठ बड़बड़ा जाते होंगे। कुछ स्पष्ट तो कुछ अस्पष्ट शब्द भी प्रस्फुटित हुए होंगे। तब वह घाव पर मरहम लगाने हेतु उस स्थिति उस दृश्यों को चित्र रूप में अभिव्यक्त कर देता होगा। तत्पश्चात उसे थोड़ा आराम, थोड़ा हल्कापन महसूस हुआ होगा।

अगर मन में किसी के संदर्भ में अभिव्यक्ति देने की इच्छा हो तो माध्यम कोई मायने नहीं रखता। यह अलग बात है कि अलग-अलग माध्यमों के लिए अलग-अलग कलात्मक तत्वों की जरूरत पड़ती है लेकिन अभिव्यक्ति का स्रोत-स्थल एक होने के कारण उसकी सूक्ष्मता बनी रहती है। रचनाकार जब रचना करता है तो स्वतः रूप से उसके निजी एवं सामाजिक जीवन के साथ-साथ उन सरोकारों के साथ भी वह टकराता है, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके जीवन पर पड़ा हो। ऐसे में विभिन्न पक्षियों की आवाज़ तरह-तरह से उसके हृदय को भेदती है। अनायास ही कलाकार-रचनाकार अपनी रचनाओं में उसे बैठा देता है, बांध देता है। कहा जाता है कि बहुत पहले श्लोक पंछी से संबंधित बना था। यहां हम एक श्लोक को देख सकते हैं–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काम मोहितम।।

रचना के विभिन्न रूपों यथा कविता, कहानी, गीत, लोकोक्ति, लोक किंवदंती, लोक नाटक आदि में भी पक्षियों का चित्रण बहुत हुआ है। 'ऋग्वेद' में भी पक्षियों की खूब चर्चा हुई है। अगर लोकगीतों में देखें तो पक्षियों को केंद्र में रखकर ढेर सारी कहानियां बनी हैं। क्षेत्रीयता, भौगोलिकता एवं माहौल के अनुसार विभिन्न पक्षियों को प्रतीकात्मक रूप में दर्शाया गया है। प्रस्तुत है भोजपुरी लोकगीत की कुछ पंक्तियां जिसमें क्रमशः कोइलिया (कोयल) की तुलना बेटी से की गई है। दूसरे गीत में सुगना (तोता) की चर्चा हुई है–

आरे-आरे बन के कोइलिया तोहार बोली सुंदरी
अइसन सुंदर बनवा छोड़ के चलल कवन देस...।

XXXX

जारे-जारे सुगना गंगा पार हो पूजन करब देवी के
बहुआ घरही में कर पूजापाठ हो पूजन कर देवी के...।

इसी तरह देश की तमाम भाषा-बोली के रचनाकारों ने अपने-अपने ढंग से इनका इस्तेमाल किया है। ऋतुओं का ज़िक्र बग़ैर इनके चित्रण के अधूरा रहा है। यहां हम मैथिली भाषा के अमर कवि विद्यापति की उक्ति देख सकते हैं–

आएल रितु पतिराज वसंत
धाओल अलिकुल माधवि-पंथ...।

अगर हम मन-मस्तिष्क में पक्षियों को रखकर चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में देखें तो इनकी एक अलग दुनिया दृष्टिगत होती है। कलाकार-मन को पक्षियों ने खूब मोहा है तभी तो हर काल में कलाकारों ने उसे रंगों-रेखाओं में उकेर कर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है।



दुसूती कपड़े पर धागे से निर्मित विनीता की कृति

पक्षियों का चित्रांकन मूर्त या अमूर्त रूप में आदिम काल से ही होता रहा है। गुफा में निवास करने वाले आदिम पुरुष दिन भर की दौड़-धूप, हार-जीत तथा शिकार की ज़िंदगी से हारे-थके या विजयी भाव में लौटते थे तो गुफा की दीवारों पर बहुत सारे रेखांकन किया करते थे। संभव है कि दिनचर्या में अन्य विषयों के साथ पक्षियों का चित्रण भी उन दीवारों पर होता होगा। यह अलग बात है कि रूपाकार तथा रेखा-संयोजन के आधार पर आनुपातिक बनावट नहीं होगी फिर भी जब वह कला रूप में विकसित हुआ तो पक्षी-आकृतियां भी अस्तित्व में आईं और उस पर विचार-विमर्श होने लगा। तब से आज तक जीवन के विकास क्रम के साथ ही पक्षी-आकृतियों में भी बदलाव आता गया।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों की पारंपरिक लोक कलाओं में भी पक्षियों का चित्रण बहुतायत रूप में हुआ है। शादी-ब्याह या अन्य आयोजनों के अवसरों पर महिलाओं द्वारा बनाए गए भित्तिचित्रण में इनका रेखांकन दृष्टिगत होता है। घर के बाहरी दीवार पर सफेद या गेरू रंग से सृजित कई प्रकार की रूपाकृति में इनकी आकृतियां दृष्टिगोचर होती हैं जिसमें लोक कलाकारों

की कल्पनाशीलता एवं उनकी सौंदर्य दृष्टि नज़र आती है। बनाई गई कला - कृतियों में कहीं कोई ज़ोर - ज़बरदस्ती किया गया हो, ऐसा महसूस नहीं होता बल्कि कलाकार की अंगुलियां स्वतः संचालित हुई हैं, ऐसा प्रतीत होता है। पक्षी-आकृति की बनावट यथार्थ नहीं होती फिर भी एक आभास आकृति ज़रूर होती है। शादी के अवसर पर ही कई इलाकों में कोहबर (भित्तिचित्र) बनाया जाता है, उसमें भी उनकी आकृतियां देखी जा सकती हैं। इसके अलावा घरेलू महिलाओं द्वारा निर्मित सुजनी, पर्दा, चादर आदि पर भी उनकी आकृतियां अंकित होती हैं। दुसूती कपड़े पर रंग-बिरंगे धागों से पक्षियों को आकार दिया गया है जो काफी श्रमसाध्य भी है। खिलौना रूप में मिट्टी, कपड़ा, पेपरमैसी द्वारा भी पक्षी-आकृतियां सृजित होती हैं। कहीं-कहीं कपड़े को काटकर पक्षी-आकृति में सिलाई करने के बाद भूसा आदि भरकर पक्षियों का रूप दिया जाता है। इससे अलग शुरू से ही एक सीमित परिधि में होता रहा है, जिसमें तोता, मोर, मैना, हंस, पपीहा, चकवा-चकवी, काग, कबूतर, खंजन, बाज, बगुला इत्यादि प्रमुख हैं। वैसे पक्षियों का चित्रण स्वतंत्र रूप से बहुत कम हुआ है। ज्यादातर सांकेतिक रूप में अथवा किसी सवारी के रूप में प्रयोग हुआ है।

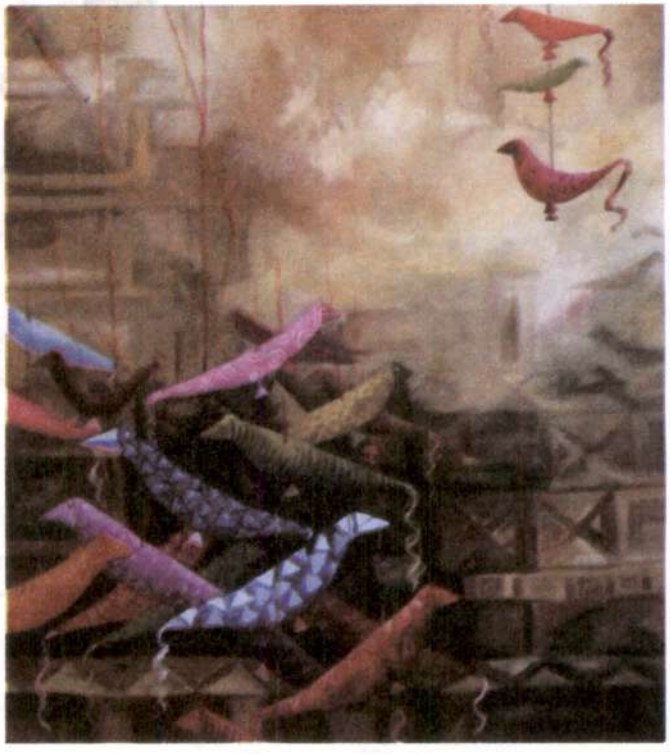


भुनेश्वर भास्कर की कृति

शुरुआती दिनों में भारतीय चित्रकला में उन पक्षियों को स्थान मिला, जिसका संबंध देवी-देवताओं से था। कई देवी-देवता ऐसे हैं जिनके वाहन पक्षी हैं जैसे—सरस्वती का वाहन हंस, कार्तिक का मोर, विष्णु का गरुड़, लक्ष्मी का उल्लू आदि। जब कलाकारों ने धार्मिक-पौराणिक कथाओं के आधार पर देवी-देवताओं को मूर्त रूप दिया तो सहज रूप से इन पक्षियों की उपस्थिति बन गई क्योंकि बग़ैर इनके चित्रण के उन्हें चित्रित नहीं किया जा सकता था। इन पक्षियों का चित्रांकन देवी-देवताओं के साथ हुआ। इसके साथ ही राधा-कृष्ण लीला से संबंधित चित्रों में मोर का प्रयोग किया गया है।

आम जन जीवन में पक्षियों का बहुत महत्व है। कई पक्षियों के साथ हमारा संवेदनात्मक संबंध रहा है। कुछ की बोली हमें प्रभावित करती है तो कुछ के रंग एवं बनावट आकर्षित करते हैं। कई पक्षियों का चरित्र ख़ास वर्ग या ख़ास व्यक्ति-विशेष के चरित्र के करीब होते हैं। अतएव जब कभी बातें होती हैं या कोई प्रसंग होता है तो उसकी तुलना उस पक्षी-विशेष से कर देते हैं। इसीलिए भारतीय चित्रकला में कई पक्षियों को प्रतीकात्मक रूप में दर्शाया गया है या किसी ख़ास दृश्य को उभारने के लिए इनका प्रयोग हुआ है। जैसे—किसी प्रेयसी के अपने प्रियतम के पास संवाद भेजने के सिलसिले में कबूतर का इस्तेमाल किया गया है। तोता-मैना का प्रयोग प्रेमी-प्रेमिका के कामोद्दीपन के रूप में किया गया है। वैसे तोता-मैना की कई तरह की दंत-कथाएं प्रचलित रही हैं। हो सकता है कि उनकी गाथा के आधार पर ही चित्रकारों ने उसे चित्रित किया हो। मैनी और बगुले की कहानी को बच्चों के खेल गीतों में भी दर्शाया गया है जिसमें मैनी और बगुले के चरित्र को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखा गया है, "मैनी खाली खैनी, बगुलवा खाला पान, मैनी के साथ बेटा, सातो पहलवान, मैनी चलेली उतान, बगुला मारेला तान"।

स्वाभाविक है कि सृजन-क्रिया में किसी पात्र को लाते हैं तो उसका अपना अतीत तो होता ही है, ख़ास चरित्र भी होता है, जो कैनवस पर परिवर्तित हो जाता है। उसकी प्रति छवि मात्र से हमारे मन में भी एक अवधारणा बनती है। मोर आनंद का प्रतीक माना जाता है। मोर का नाम आते ही सावन महीने की याद ताज़ा हो जाती है। उमड़ते-घुमड़ते बादल कभी काले रंग में दिखते हैं तो कभी भूरे बनकर बूंदा-बूंदी रूप में टपक जाते हैं। ऐसे में मोर आनंदित हो उठता है और नाचने लगता है। ज्यादातर कलाकारों ने इसके इसी रूप की कल्पना चित्रों में की है। मोर का प्रयोग प्रेमी-प्रेमिका के बीच आनंद विभोर दृश्य को उभारने में सहायक होता है। पपीहा पक्षी प्रेमियों के संतृप्त मन को संकेत करता है। आम जीवन में पति-पत्नी की चर्चा हुई है जिसमें पपीहा की व्याख्या भी होती है। जनमानस में किसी टिटिहरी का बोलना अशुभ माना जाता है। तरह-तरह की मान्यताएं हैं। इसके साथ ही कुछ कलाकारों ने टिटिहरी के उस रूप जिसमें वह सोते समय अपने पैरों को ऊपर की ओर कर लेती है और टूटते हुए आसमान के टुकड़े को रोकने की इच्छा रखती है, को उकेरा है। खंजन पक्षी का चित्रांकन युगल के अशांत मन को दर्शाने के लिए किया जाता है। तोता ज्ञान का प्रतीक तो माना ही जाता है, काम-क्रीड़ा का संबंध भी इससे है। कबूतर का प्रयोग शांति के रूप में किया जाता है। मुर्ग़ायुद्ध आपसी लड़ाई को संबोधित करता है। बाज़ का चित्रांकन शक्तिशाली या प्रभावशाली व्यक्तित्व को उभारने के लिए किया जाता है। कौवे की होशियारी चर्चा में रहती है। कौआ का किसी आंगन या छप्पर पर बैठना किसी संबंधी के आने की सूचना तो देता ही है, संदेश भेजने की कल्पना भी काग से होती है। काग की आकृति एक प्रचलित लोकगीत की



भुनेश्वर भास्कर की कृति



मुग़ल चित्रशैली में पक्षियों का प्रयोग

याद ताज़ा करती है जिसमें पति का इंतज़ार करती हुई पत्नी संदेश भेजने के लिए काग से बात करती है–

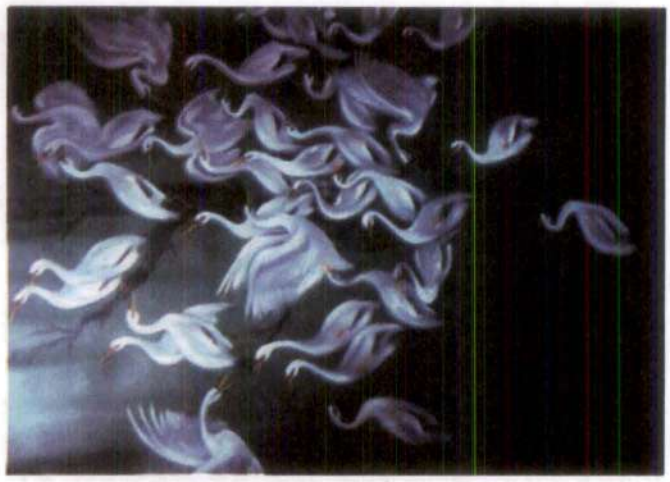
पिआ के संदेश कगवा हाली-हाली जइह
तोहके खिलाइब कगवा दूध अउरी भातवा हो रामा...।

इसके साथ ही भारत के कई राज्यों में महिलाओं में गुदना गुदवाने की प्रथा रही है। आज भी कमोबेश जारी है। शरीर के कई अंगों ख़ासकर हाथ पर नाम तथा चित्र गुदवाने का रिवाज था। इसमें औरतें अपने हाथों पर तोता, मोर, मैना आदि गुदना गुदवाती थीं। आज भी बिहार, झारखंड, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ जैसे प्रदेशों में औरतें शौक से गुदना गुदवाती हैं। वर्तमान समय में बड़े शहरों या महानगरों में युवाओं में शरीर के अंग पर टैटू बनवाने का चलन है, उसमें भी पंछी आकृतियां दृष्टिगत होती हैं। कपड़ा-छपाई के डिज़ाइन के लिए भी पक्षी-आकृतियों को चुना गया है। साड़ी, शर्ट, दुपट्टा के अलावा टी-शर्ट पर भी पक्षी-आकृतियों की उपस्थिति है।



राजा रवि वर्मा की कृति 'हंस दमयंती'

भारतीय कला ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार पक्षी चित्रांकन को मुग़ल चित्र शैली में मुग़ल बादशाहों द्वारा काफी बल मिला। मुग़ल चित्रशैली में पक्षियों का प्रयोग खूब हुआ। मुग़ल बादशाह कलाप्रेमी तो थे ही, इनका लगाव प्राकृतिक सौंदर्य एवं पशु-पक्षियों से गहरा था जिसके कारण इस कला को काफी बल मिला। प्रारंभ में इसका चित्रांकन पुस्तक की सजावट के लिए किया जाता था। मुग़ल काल के कई ऐसे ग्रंथ हैं जिसके हर पन्ने पर पक्षियों के चित्र बने हैं। 'बाबरनामे' और 'अकबरनामे' पर भी अकबर काल के प्रसिद्ध चित्रकार मनोहर द्वारा बनाए गए चित्र हैं। साथ ही मुग़ल चित्रकार मंसूर ने अपने चित्रों में स्वतंत्र रूप से पक्षियों का



अनिल बल की कृति

अंकन किया है। इनके द्वारा बनाए गए चित्रों में सारस, बाज़, चील, गिद्ध आदि का प्रयोग हुआ है। इस कला को प्रोत्साहित करने में मुग़ल बादशाह अकबर, जहांगीर, शाहजहां–इन तीनों का योगदान रहा है। ख़ासकर जहांगीर ने मुग़ल चित्रशैली में पक्षी-चित्रों का एक एलबम बनवाया जो इस शैली की अमूल्य संपत्ति है। वास्तव में जहांगीर के काल को ही इसका चरम काल माना जाता है। शाहजहां की दिलचस्पी मूलतः शिल्पकला में थी लेकिन उनका पुत्र दारा शिकोह चित्र प्रेमी था। उसके द्वारा बनवाए गए एलबम में अनेक ऐसे सुंदर चित्र हैं जो प्रभावशाली हैं।

मुग़ल शैली के अधिकांशतः कलाकृतियों में मुग़ल बादशाहों तथा बेगमों के हाथ में बाज़ या तोता नज़र आते हैं। इस शैली में पक्षियों को जो प्रमुखता प्रदान की गई है वह मानव तथा पक्षियों के बीच घनिष्ठ संबंध का परिचायक है।

अंग्रेज़ों के शासन काल में कोई ख़ास प्रगति नहीं हुई लेकिन 19वीं शताब्दी में राजा रवि वर्मा ने जब पौराणिक कथाओं पर चित्र सृजित करना शुरू किया तो कई कलाकृतियों में पक्षियों का प्रयोग किया। 'हंस दमयंती' उनकी चर्चित कृति है जिसमें हंस को प्रमुखता दी गई है। इसके साथ ही 20वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में भारत में जब आधुनिक कला की शुरुआत हुई तभी बंगाल के कई कलाकारों ने पक्षियों का सृजन किया। आधुनिक कला में इसका प्रयोग प्रतीकात्मक तथा स्वतंत्र, दोनों रूप में किया जाता रहा है। देश के छोटे-बड़े क़स्बाई शहरों से लेकर महानगरों में रह रहे हज़ारों कलाकार ऐसे हैं जो आंशिक या विस्तारित रूप में पक्षियों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति दे रहे हैं। यहां सबकी चर्चा करना संभव नहीं है, उस पर अलग से बातें करने की जरूरत है, फिर भी कुछ समकालीन कलाकार जिनकी कृतियां अक्सर देखने को मिल जाती हैं–शुभाप्रसन्न की कृति 'पक्षी', बीरेश्वर भट्टाचार्या की 'सर्कस', जया अप्पासामी की 'सैरा', श्याम शर्मा की 'छापा कला', जे. स्वामीनाथन की 'पक्षी पहाड़', बी आर खजूरिया की 'उड़ती चिड़िया', अमरजीत सिंह भोगल की 'प्रेम-भाव', अजीत दूबे की 'चिड़िया', के. के. हेम्बर की 'मुर्ग़ायुद्ध', अशोक भौमिक की 'शीर्षकहीन', अनिल बल की 'मेरे गांव की एक शाम' आदि प्रमुख हैं। ❑

संपर्क : म.नं. जी-52 बी, तृतीय तल, गली नं. 16, जगतपुरी, दिल्ली-110051

खंखर भया पलाश

फरवरी से मई-जून तक जब भी पलाश की काली कलियों से चटक लाल रंग के फूल खिलते हैं तो लगता है कि सारा जंगल अंगारों से दहक उठा है। संस्कृत में 'किंशुक' नाम है, पलाश का जिसका अर्थ है 'शुक' यानी तोते की जैसी लाल चोंच जैसा फूल, चर्चा कर रहे हैं **शिवचरण चौहान**

कवियों, शायरों, साधु-संन्यासियों तथा आम आदमी को सम्मोहित करने वाला 'पलाश' आज संकट में है। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि अगर इसी तरह पलाश के वृक्षों का विनाश जारी रहा तो पलाश यानी टेसू यानी ढाक 'ढाक के तीन पात' वाली कहावत में ही शेष बचेगा। अरावली, सतपुड़ा पर्वत शृंखलाओं में जब पलाश वृक्ष चैत (बसंत) में फूलते थे तो लगता था कि मीलों लंबे पलाश वन में आग लग गई हो। स्वयं अग्नि देव फूलों के रूप में खिल उठे हों। खेतों की मेड़ों से लेकर पर्वतों तक अपना ध्वज फहराने वाला पलाश, एक-दो दिन में ही संकट में नहीं आ गया है। पिछले तीस-चालीस वर्षों में दोना-पत्तल बनाने वाले कारखाने बढ़ने, गांव-गांव में चकबंदी होने तथा वन माफ़ियाओं द्वारा अंधाधुंध कटान कराने के कारण उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि प्रांतों में पलाश के वन घट कर दस प्रतिशत से भी कम रह गए हैं। वैज्ञानिकों ने पलाश वनों को बचाने के लिए उत्तक संवर्द्धन (टिशू कल्चर) द्वारा परखनली में पलाश के पौधों को विकसित कर एक अभियान चलाकर पलाश वन रोपने की योजना प्रस्तुत की है। हरियाणा तथा पुणे में ऐसी दो प्रयोगशालाएं भी खोली हैं।



एक समय था जब बंगाल का पलाशी का मैदान, अरावली की पर्वत मालाएं टेसू के फूलों के लिए दुनिया-भर में मशहूर थीं। विदेशों से लोग पलाश के रक्तिम वर्ण के फूल देखने आते थे। महाकवि पद्माकर का छंद—"कहैं पद्माकर परागन में, पौन हूं में, पानन में पिक में, पलासन पगंत है"—लिखकर पलाश की महिमा बखान की थी। ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी लोकगीतों में पलाश के गुण गाए गए हैं। कबीर ने तो यह कहकर पलाश की तुलना एक ऐसे सुंदर-सजीले नव-युवक से की है, जो अपनी जवानी में सबको आकर्षित कर लेता है किंतु बुढ़ापे में अकेला रह जाता है—

कबीर गर्व न कीजिए, इस जोबन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास।।

वसंत व ग्रीष्म ऋतु में जब तक टेसू में फूल व हरे-भरे पत्ते रहते हैं, उसे सभी निहारते हैं किंतु शेष आठ महीने वह पतझड़ का शिकार होकर झाड़-झंखाड़ की तरह रह जाता है। अवधी भाषा का एक प्रसिद्ध लोकगीत है—

छापक पेड़ छ्यूलिया कि तेहि छांह गहवर हो।
कि ता तर हिरनी उदास कि मन अति अनमन हो।।

अवधी भाषा में पलाश को 'छ्यूल' कहा जाता है। एक छ्यूल के वृक्ष के नीचे एक हिरनी उदास खड़ी है। रानी कौशल्या, वहां से गुज़रीं तो हिरनी को उदास खड़ी देख उदासी का कारण पूछा? हिरनी बाली—महारानी, मेरे हिरन को तुम्हारे सैनिकों ने मार डाला। हिरन की खाल से तुम्हारे बेटे राम का बिछौना (मृगचर्म) बनाया गया है तथा खंजड़ी व डमरू मढ़े गए हैं। यदि मेरे हिरन की खाल तुम मुझे वापस दिला दो तो मैं उसे ढाक के पेड़ पर टांग कर उसे निहारते हुए अपना जीवन गुज़ार दूंगी। .... पर रानी तो रानी। स्त्री होकर भी एक स्त्री का दुख नहीं समझ पातीं। अनेक लोक भाषाओं में पलाश का उल्लेख मिलता है। हरछठ यानी हरतालिका तीज में तो ढाक के वृक्ष की पूजा की जाती है। यज्ञ, हवन, पूजा, पाठ व दैनिक कामों में पलाश के पत्तों, फूलों व लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि पलाश सदियों से जन-जन में रचा बसा था।

अब जबकि पर्यावरण के लिए प्लास्टिक-पॉलीथीन की थैलियां नुकसान प्रद पाई गईं और इन पर रोक लगाई गई। ऐसे में पलाश वृक्ष की उपयोगिता महसूस की गई जिसके पत्ते दोने, थैले, पत्तल, थाली, गिलास सहित न जानें कितने काम में उपयोग में आ सकते हैं। पर पिछले तीस-चालीस सालों में पलाश के नब्बे प्रतिशत वन नष्ट कर डाले गए। बिन पानी के बंजर, ऊसर तक में उग आने वाले इस पेड़ की नई पीढ़ी नहीं तैयार हुई। यदि यही स्थिति रही और समाज जागरूक न हुआ तो पलाश विलुप्त वृक्ष हो जाएगा। वैज्ञानिकों ने अरावली सहित अनेक स्थानों में लुप्त होते पलाश के वन पुनः विकसित करने के लिए उत्तक संवर्द्धन (टिशू कल्चर) तथा माइक्रो प्रवर्धन का सहारा लिया है। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि हाईटेक आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी की बदौलत वह पलाश के लाखों पौधे परखनली में उगाकर पलाश को पुनः जीवित कर देंगे। इसके लिए गोल पहाड़ी हरियाणा स्थित टाटा ऊर्जा अनुसंधान के टिशू कल्चर पायलट प्लांट तथा पुणे स्थित राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला में नए प्रयोग शुरू कर दिए हैं। पलाश का वैज्ञानिक नाम 'ब्यूटिया मोनोस्पर्मा' है। इसे हिंदी में ढाक टेसू, संस्कृत में किंशुक, ब्रह्मवृत, रक्त पुष्पक, बांग्ला में पलाश तेलुगु में पलासमू, गुजराती में खांकरो, केसुडानो, तमिल में पलासु, कन्नड़ में मुत्तुंकदंडिका, उर्दू में पापडा, राजस्थानी में चौर, छोवरो, खांकरा तथा अंग्रेज़ी में लेम ऑफ फारेस्ट के नाम से जानते हैं।

फरवरी से मई-जून तक जब भी पलाश की काली कलियों से चटक लाल रंग के फूल खिलते हैं तो लगता है कि सारा जंगल अंगारों से दहक उठा है। संस्कृत में 'किंशुक' नाम है पलाश का जिसका अर्थ है 'शुक' यानी तोते की जैसी लाल चोंच जैसा फूल जबकि अंग्रेज़ी नाम लेम ऑफ फारेस्ट ('जंगल की आग') है। पलाश भारत का एक सुपरिचित वृक्ष है। यह मझोला 10 से 15 फुट ऊंचा पतझड़ी वृक्ष है। इसके पत्तों में एक डंठल में तीन पत्तक होते हैं। शायद इसी कारण 'ढाक के तीन पात'—वाली कहावत लोक जीवन में मशहूर हुई। पत्तों से पत्तल, दोने, बीड़ी, छप्पर, छानी बनाए छाए जाते हैं। पत्तों को पशुओं के चारे व सूखे पत्ते आग जलाने के काम आते हैं। शीत ऋतु में पलाश पर्णहीन होकर झाड़ जैसा बन जाता है। पर्णहीन वृक्ष में फरवरी-मार्च में कोयले

पृष्ठ 53 पर जारी

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान

बाल लिंग अनुपात (सीएसआर) जिसे लड़कों के प्रति 1000 से लड़कियों की संख्या के अनुपात में परिभाषित किया गया है, वह मौजूदा समय-सीमा में चिंताजनक स्थिति में है। 1991 में 945, 2001 में 927 तथा 201। में 918 होती हुई यह संख्या महिलाओं का असशक्तिकरण का प्रमुख सूचक है। यह जन्म, कन्या लिंग चयन, उनके स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा में हो रहे उनके प्रति भेदभाव को दर्शाता है। भारत सरकार ने लड़कियों को बचाने, उनकी सुरक्षा करने और उन्हें शिक्षा देने के लिए बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ (बीबीबीपी) योजना की शुरुआत की। इसका उद्देश्य देश भर में जन अभियान के माध्यम से बदलती हुई सामाजिक मानसिकता को लक्ष्य करके और इस विषम विषय पर जागरूकता का निर्माण करते हुए बाल लिंग अनुपात में आ रही गिरावट का समाधान करना है। योजना का केंद्रित हस्तक्षेप नीची बाल लिंग औसत वाले 100 जिलों में विभिन्न क्षेत्रबार कार्रवाइयों पर होगा। यह महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय और मानव संसाधन कल्याण मंत्रालय की एक संयुक्त पहल है।



इस पहल में उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय : आंगनवाड़ी केंद्रों पर गर्भावस्था के पंजीकरण को प्रोत्साहित करना; भागीदारों को प्रशिक्षित करना; सामुदायिक लामबंदी और संवेदीकरण; लैंगिक चैंपियनों को शामिल करना; अग्रिम मोर्चे पर काम कर रहे कार्यकर्ताओं और संस्थानों को मान्यता और पुरस्कार देना।

2. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय : गर्भधारण पूर्व और जन्मपूर्व जांच तकनीकों का निगरानी क्रियान्वयन कानून 1994; अस्पतालों में प्रसव को बढ़ोतरी; जन्म पंजीकरण; पीएनडीटी सेल को मज़बूत करना; निगरानियों, समितियों का गठन।

3. मानव संसाधन विकास मंत्रालय : लड़कियों का सर्वजनीय पंजीकरण; ड्रॉप आउट दर में कमी लाना; विद्यालयों में लड़कियों के अनुरूप मानक बनाना; शिक्षा का अधिकार अधिनियम का सख्ती से क्रियान्वयन करना; लड़कियों के लिए सुचारू शौचालयों का निर्माण।

बेटी

वंदना वीथिका

आंगन में मां के, चहकती पंछी है बेटी,
गोद में पिता के, स्नेहिल थपकी है बेटी।
कलाई पर भाई की हंसती राखी है बेटी–
सहेलियों संग करती ठिठोली है बेटी!
पर, होता है क्या कि जाते ही ससुराल–
परिभाषाओं की बदलती परिधि है बेटी!
ससुराल की लालची आंखों में तब
दहेज की रकम बनती है बेटी–
फूलों में पली, प्यार में बढ़ी,
ज़िंदगी की चोट सहती है बेटी!
''औरत हो तुम, तुच्छ हो हमसे''–
पति के ये ताने भी सहती है बेटी!
परिवार न बिखरे, बाबुल न रोए,
क़िस्मत की मार भी सहती है बेटी।
सपनों के रंग बिखरते हैं जब,
आंसुओं की रंगहीन तस्वीर है बेटी।
ख़ामोश होंठों से, आंखों से कहती–
अनकही दास्तां-सी होती है बेटी।
ज़ख़्मों को सहती, चुपके से रोती,
दुनिया को 'अलविदा' कहती है, बेटी।
दर्दों से लबालब, प्याली है बेटी,
संभालो इसे कहीं, छलके न बेटी,
समझो इसे क्या चीज़ है बेटी,
कभी छलके न बेटी, रोए न बेटी, हाय ए! बेटी,

... .

समाज के मस्तक पर बने तिलक बेटी,
कभी मिट न पाए, शृंगार है बेटी।
करो कुछ ऐसा कभी रोए न बेटी–
हर परिवार महल में घर पूजा का बेटी,
करो मान इसका, सम्मान की देवी
सम्मान की देवी!!
है सम्मान की देवी!!!

संपर्क : तुतबाड़ी, गया (बिहार)

कहानी

दूसरा तलाक़

रतन सिंह
उर्दू से अनुवाद : **शमीम अहमद**

उसे अपने बेटे से जितनी मुहब्बत है उससे कहीं ज्यादा शिद्दत से उसे नफ़रत भी करती है वह।

मुहब्बत इसलिए कि नौ महीने तक उसकी कोख में पला है और उसकी रगों में उसका खून दौड़ रहा है। अपने खून से प्यार होना एक कुदरती जज़्बा है और नफ़रत इसलिए कि वह उस बाप का बेटा है, जिसने अपने बीज को उसके वजूद की धरती में बोने के फ़ौरन बाद उससे नाता तोड़ लिया था।

"मैं इस बच्चे को क्यों पालूं"?

यह प्रश्न उसके दिमाग़ में तभी से उबलता रहा है जब यह रिश्ता टूटा था।

"यह मेरा क्या लगता है? जो शख़्स मेरी ज़िंदगी से निकल गया उसका बच्चा मेरे वजूद में क्यों पनप रहा है? यह मेरे पेट में क्यों पल रहा है? यह पेट में हिलता है तो मुझे लगता है जैसे इसका बाप मेरे पेट में दाख़िल होकर मेरे वजूद को काट रहा हो, तोड़ रहा हो, टुकड़े-टुकड़े कर रहा हो"।

इसीलिए उसने कई बार सोचा कि वह इससे छुटकारा हासिल कर ले।

यही सोचकर अपनी ओर से पक्का इरादा करके उसके क़दम किसी मेटरनीटि होम की ओर बढ़े भी लेकिन कभी आधा रास्ता जाकर कभी मैटरनीटि होम के फाटक तक पहुंचकर उसका दिल लड़खड़ा जाता। क़दम रुक जाते, यह सोचकर कि आख़िर...

"...आख़िर इस बच्चे का क्या दोष है? मैं इसे ज़िंदगी में दाख़िल होने से क्यों रोकूं?"

और वह वापस आती-जाती रही।

एक बार तो उसके दिल में इस बच्चे के लिए इस हद तक नफ़रत उमड़ कर आई कि वह बड़ी मज़बूती के साथ मैटरनीटि होम तक ही नहीं बल्कि डाक्टर के सामने मरीज़ की कुर्सी पर बैठ गई।

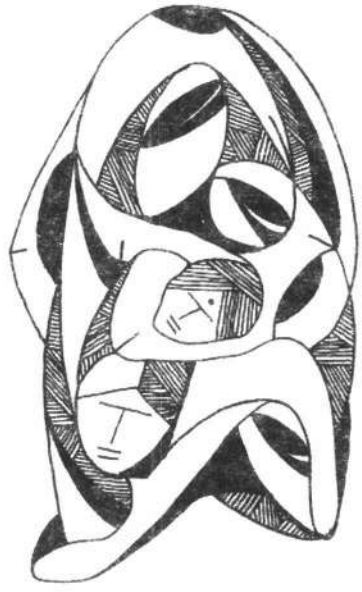
उसने होठ खोले, कुछ बोलना चाहा।

लेकिन बजाय इसके कि उसके होठों से शब्द निकलते, उसकी आंखों से आंसू टप-टप गिरने लगे।

गर्म-गर्म आंसू उसके फूले हुए पेट पर जाकर गिरे तो उसने अपने अंदर बड़ी ठंडक सी महसूस की। ठंडक जिसे ममता का नाम दिया जा सकता है।

"ममता"

मां की ममता।



ममता जिसकी बांहों में ज़िंदगी पनपती है, हुमकती है, हंसती है और अपने पांव पर खड़ी हो जाती है।

इसी जज़्बे के साथ वह चुपचाप उठी और डाक्टर के कमरे से बाहर आ गई और जब वह मैटरनीटि होम के फाटक से निकलकर काफ़ी आगे आ गई तब कहीं जाकर उसके दिल को चैन मिला। पेट के अंदर बच्चा हिल रहा था जैसे वह जॉन बख़्शने के लिए मां का शुक्रिया अदा कर रहा हो।

और वह अपने फूले हुए पेट पर ऐसे हाथ फेरने लगी जैसे पेट के अंदर बच्चे को दुलार कर रही हो।

और फिर पता नहीं क्या हुआ। थोड़ी देर बाद उसने अपना हाथ पेट से उठा लिया, "नहीं मैं इसे दुलार नहीं कर सकती, यह मेरा क्या लगता है?"

और इस बच्चे की तरफ़ से ध्यान हटाने के लिए वह ऊपर नीले आसमान की तरफ़ देखने लगी जहां पक्षियों का झुंड उड़ा जा रहा था।

बहुत देर तक उसकी नज़रें उस झुंड का पीछा करती रहीं। ऐसा करते हुए वह लाशऊरी तौर पर खुद को उस बच्चे से दूर ले जाने की कोशिश कर रही थी जो उसके पेट में पल रहा था।

इसी नफ़रत-मुहब्बत, मुहब्बत-नफ़रत भरे जज़्बों के दौर से गुज़रते हुए उसने उस बच्चे को जन्म दिया।

उसके पैदा होने से पहले दर्द ने उसके वजूद को झकझोड़ दिया तो एक बार उसके दिल में आया कि पराए हो चुके मर्द के बच्चे को पैदा करने के लिए इतना दर्द सहने से तो बेहतर था, मैं मर जाती और उसने आंखें बंद कर लीं।

जैसे सचमुच मरने की कोशिश कर रही हो।

तभी दर्द की एक लहर धड़ के निचले हिस्से से शुरू होकर कमर की तरफ़ बढ़ी तो उससे निजात पाने के लिए उसने एड़ियों तक ज़ोर लगा दिया तो कुछ राहत महसूस की।

बच्चा उसके वजूद से अलग होकर दुनिया में आ गया था।

उसने आंखें बंद कर लीं।

कमज़ोरी की वजह से वह पता नहीं कितनी देर निढाल पड़ी रही।

आंखें मूंदे जैसे वह बच्चे को देखना न चाह रही हो।

"मुबारक हो। आपको बेटा पैदा हुआ है।" नर्स की आवाज़ उसके कानों में पड़ी और साथ ही उसने बच्चा उसके साथ लिटा दिया।

बच्चे का स्पर्श पाते ही उसे घिन सी महसूस हुई। उसने सोचा जैसे उसका शौहर (पति) उसके साथ आकर लेट गया हो, ऐसा महसूस करते ही उसके दिल में नफ़रत की लहर दौड़ गई और उसने पीछे सरकना चाहा लेकिन कमज़ोरी की वजह से वह ऐसा नहीं कर पाई।

तभी थोड़ी देर बाद नवजात शिशु की खुशबू उसके नथुनों में पहुंची तो उसके अंदर की औरत का वजूद खुशबू-खुशबू हो गया। ऐसा होते ही थोड़ी देर पहले बर्दाश्त होने वाले दर्द की कैफ़ियत को भी भूल गई। उसने खुद को बड़ा हल्का-हल्का महसूस किया और उसे पता ही नहीं चला कि कब उसका हाथ नवजात शिशु की कमर को, मुंह को, उसके सारे शरीर को छूकर ऐसी खुशी महसूस कर रहा था, जैसे उसकी ज़िंदगी में चारों तरफ़ फूल ही फूल खिल गए हों।

खुशबुओं से लदी दुनिया में पहुंच कर उसकी आंख लग गई तो नींद की सूरत में भी, बल्कि सपने में वह उस खुशबू को अपने ईद-गिर्द महसूस कर रही थी, इस तरह कभी ममता की खुशबुओं

पृष्ठ 38 पर जारी

बालपत्रिकाओं का परिदृश्य

बाल साहित्य के प्रति अपने दायित्व को निभाते हुए प्रकाशन विभाग उत्कृष्ट बाल साहित्य के प्रकाशन में निरंतर संलग्न है तथा सुरुचिपूर्ण और मनोरंजक पुस्तकें प्रकाशित करता रहा है। विभाग की लोकप्रिय पत्रिका 'बाल भारती' पिछले 66 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है और बाल पत्रिकाओं में सम्मानजनक स्थान बना चुकी है। प्रकाशन विभाग ने दिल्ली पुस्तक मेले के अवसर पर 27 अगस्त 2014 को एक संगोष्ठी का आयोजन किया था जिसका विषय था 'हिंदी बालपत्रिकाओं का परिदृश्य'। इस संगोष्ठी में सुप्रसिद्ध साहित्यकार योगेन्द्र दत्त शर्मा, देवेंद्र मेवाड़ी, देवेंद्र कुमार और रमेश तैलंग ने 'हिंदी बालपत्रिकाओं का परिदृश्य' विषय पर अपने विचार प्रकट किए जिन्हें 'आजकल' (हिंदी) पत्रिका के अंकों में क्रमशः शामिल किया जा रहा है। प्रस्तुत है इस अंक में उपर्युक्त विषय पर **रमेश तैलंग** *का आलेख।*

हिंदी बाल पत्रिकाओं की लंबी परंपरा रही है और इस परंपरा की साक्षी अनेक बाल पत्रिकाएं अपना-अपना इतिहास रचकर अब काल-कवलित हो चुकी हैं। जिसका अधिकांश परिचय आपको पूर्व आलेखों द्वारा मिल चुका है। इसलिए मैं यहां उसकी पुनरावृत्ति न करके पिछले दो-तीन दशकों में कुछ बाल पत्रिकाओं की रचना-सामग्री, उनके स्वरूप तथा प्रकृति में आए बदलावों के बारे में संक्षिप्त चर्चा करना चाहूंगा। बालपत्रिकाएं भी मीडिया जगत का ही एक हिस्सा हैं और जब पूरे मानव समाज की तरह मीडिया भी उपभोक्ता संस्कृति और बाज़ारवाद की चपेट में आया हुआ है तो बालपत्रिकाओं, ख़ासतौर पर वे जो व्यावसायिक घरानों से प्रकाशित हुई या हो रही हैं, का इस चक्रव्यूह से बच पाना बहुत ही दुष्कर है। कमोवेश रूप से जो बाल पत्रिकाएं उपभोक्तावादी संस्कृति के आक्रमण से बचने का प्रयास करती रहीं या कर रही हैं, वे या तो कालकवलित हो चुकी हैं या फिर किसी तरह जीवित रहने के लिए लगातार जूझ रही हैं।

प्रसार संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो 'नंदन' जैसी बड़ी और स्थापित पत्रिका को इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित हो रही मासिक बाल पत्रिका 'देवपुत्र' ने चुनौती दे रखी है। बताया जाता है कि उसकी दो-तीन लाख प्रतियां छपकर वितरित होती हैं। इसके पीछे के कारणों में मैं नहीं जाना चाहूंगा। हां, एक बात अवश्य कहना चाहूंगा कि इन दोनों पत्रिकाओं की संपादकीय दृष्टि, रचना सामग्री, आकार, साज-सज्जा और मूल्य में काफी अंतर है और दोनों के पाठक भी अलग-अलग श्रेणी के हैं। टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह की प्रतिष्ठित बाल पत्रिका 'पराग' अपनी रचना-सामग्री और प्रकृति में 'नंदन' से अलग रही और उसका प्रकाशन भी 'नंदन' से पहले हुआ। बाल पत्रिकाओं पर किसी तरह की परिचर्चा हो तो वह इन दोनों शीर्ष पत्रिकाओं की चर्चा किए बिना पूरी नहीं होती। इसलिए उनका संदर्भ बार-बार यहां आना स्वाभाविक है। 'पराग' को स्थापित करने तथा बालपाठकों की बदलती रुचियों के अनुकूल संवारने में आनंदप्रकाश जैन से लेकर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कन्हैयालाल नंदन, प्रयाग शुक्ल तथा हरिकृष्ण देवसरे तक का स्मरण हो आना लाज़िमी है। इसी तरह 'नंदन' के संदर्भ में मोहन राकेश, राजेंद्र अवस्थी से लेकर जयप्रकाश भारती और वर्तमान पीढ़ी की क्षमा शर्मा, जयंती रंगनायन तक का योगदान याद रखा जाना चाहिए।

1948 में देवेंद्र सत्यार्थी के संपादन में शुरू हुई 'बाल भारती' आज सभी हिंदी बाल पत्रिकाओं की बड़ी बहन है और 66 वर्ष की वय पार करके तो उसे दादी-नानी की श्रेणी में शुमार हो जाना चाहिए पर आप जानते हैं साहित्य कभी पुराना नहीं होता और सही मायने में जो बच्चे हैं वे कभी बूढ़े नहीं होते। इसलिए 'बाल भारती' को आप सदाबहार पत्रिका की संज्ञा आराम से दे सकते हैं। 'बाल भारती' का जुड़ाव मेरे बचपन से रहा है जब इसकी संपादक सावित्री देवी वर्मा हुआ करती थीं। साठ के दशक की बात होगी तब इस पत्रिका का आकार भी बड़ा हुआ करता था और मूल्य भी शायद रुपयों में नहीं कुछ आनों में हुआ करता होगा। बहरहाल अपने छह-सात दशकों की अवधि में इस लोकप्रिय पत्रिका ने हिंदी बाल पत्रकारिता में एक इतिहास रचा है और कई ऐसे अविस्मरणीय अंक दिए हैं जो और कहीं प्राप्त न हो सकें। 'बाल भारती' पत्रिका ने हिंदी तथा हिंदेतर भाषाओं के प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित लेखकों, कवियों से आग्रहपूर्वक रचनाएं लिखवाकर छापी है, और रचनाएं भी ऐसी जो आपको अन्यत्र ढूंढने से नहीं मिलेंगी। लेखकों से आग्रहपूर्वक रचना लिखवाने की स्वस्थ परंपरा अब, खेद है, समाप्तप्राय हो चुकी है। यह सौभाग्य की बात है कि बाल भारती में पिछले छह-सात दशकों में छपी कुछ अनूठी चयनित बाल कहानियों के तीन संग्रह प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली ने अभी प्रकाशित किए हैं। कहानियों का चयन जाने-माने बाल साहित्यकार प्रकाश मनु ने किया है।

इन संग्रहों की विशेषता यह है कि इनमें तीन पीढ़ियों के साहित्यकारों जिनमें देवेंद्र सत्यार्थी, यामू सन्यासी, भीष्म साहनी, मन्मथनाथ गुप्त, सावित्री देवी वर्मा, द्रोणवीर कोहली, हरिकृष्ण देवसरे, मनोहर वर्मा, मनहर चौहान, राष्ट्रबंधु, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', रमेशभाई, प्रकाश मनु जैसे दिग्गज लेखकों से लेकर नई पीढ़ी के मोहम्मद साजिद खान, ओमप्रकाश कश्यप, संजीव जायसवाल 'संजय', अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन' जैसे बाल साहित्यकारों की रोचक बाल कहानियां शामिल हैं। ये अनूठे बालकथा संग्रह, आप और आपके बच्चे अवश्य पढ़ना चाहेंगे। हर महीने पांच-छह कहानियां, दो तीन कविताएं और पांच से सात जानकारी पूर्ण लेख जिनमें विश्व-विरासत, संगीत, विभूतियों पर चित्रकथाएं तथा भारतीय संस्कृति के अलावा ज्ञान-विज्ञान आदि पर स्तंभ इस पत्रिका को सही मायनों में एक संपूर्ण बाल पत्रिका की संज्ञा देने के योग्य साबित करते हैं। यह एक ऐसी अनूठी बाल पत्रिका है जिसने विश्व बाल साहित्य की कृतियों से चुन-चुनकर हिंदी में रूपांतरित अनेक कहानियां लगातार बाल पाठकों के सामने प्रस्तुत की हैं।

'बाल भारती' के बाद अब मैं यहां कुछ और पत्रिकाओं की भी संक्षिप्त चर्चा करना चाहूंगा जिनमें 'मेला, 'बालमेला', 'बालहंस', 'चकमक', 'नई पौध', 'बालवाटिका', 'सुमन सौरभ', 'चंपक', 'नन्हे सम्राट', 'स्नेह', 'बालप्रहरी', 'अभिनव', 'बाल मन', 'अक्कड़-बक्कड़' तथा 'नन्हीं कलम' शामिल है। 'मेला' आनंदबाज़ार पत्रिका प्रकाशन द्वारा कोलकता से योगेंद्र कुमार लल्ला के संपादन में शुरू हुई थी जिसने नई पीढ़ी के लेखकों के साथ-साथ बड़े-बड़े हिंदी लेखकों को अपने से जोड़ा जिनमें कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, पद्मा सचदेव, भवानी प्रसाद मिश्र, के. पी. सक्सेना, चिरंजीव, दामोदर अग्रवाल शामिल थे। इस पत्रिका के कोई चालीस-पचास अंक निकले और फिर यह अज्ञात कारणों से बंद हो गई पर इसकी लोकप्रियता पूरे भारत में रही। इसके कुछ अनुपलब्ध अंक लल्लाजी के पास सुरक्षित हैं जो एक धरोहर

से कम नहीं। 'मेला' के अलावा 'बाल मेला' नाम से एक बहुरंगी बाल पत्रिका राधेश्याम प्रगल्भ के संपादन में शुरू हुई थी जिसकी साज-सज्जा तथा सामग्री अनूठी थी पर उसे भी कुछ अंकों के प्रकाशन के बाद बंद होना पड़ा। लगभग यही परिणाम रामकुमार कृषक के संपादन में शुरू हुई 'नई पौध' बाल पत्रिका का हुआ। ये पत्रिकाएं यदि आज जीवित रही होतीं तो निश्चित रूप से हिंदी बाल पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान दे रही होतीं।

'बालहंस' पत्रिका ने राजस्थान सहित पूरे हिंदी प्रदेश में अपनी पहुंच बनाई हुई है पर इसके स्वरूप और कंटेंट में काफी परिवर्तन आया है। अनंत कुशवाहा के संपादन काल में इसकी जो छवि बनी थी वह काफी कुछ धूमिल हुई है। 'चकमक' बाल विज्ञान पत्रिका है और इसके संपादकों में राजेश उत्साही तथा सुशील कुमार शुक्ल का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। चूंकि यह एक शिक्षा से जुड़े ग़ैर-सरकारी स्वायत्त संगठन द्वारा प्रकाशित की जाती है इसलिए इसकी रीति-नीति उस संगठन की नीति के अनुसार ही चलती है। पर इस पत्रिका ने, इसमें कोई संदेह नहीं, पूरे भारत में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाया हुआ है और इसकी अधिकांश सामग्री बच्चों के कार्यकलाप तथा विज्ञान की अनूठी जानकारियों से भरपूर होती है। जहां तक इसमें प्रकाशित बाल साहित्य का प्रश्न है उस पर अनेक राय हो सकती हैं पर इस पत्रिका से गुलजार, प्रयाग शुक्ल से लेकर अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकार जुड़े हुए हैं। प्रभात के बालगीत जिनमें लोकगीतों की मिठास भी मिलती है इस पत्रिका की अनुपम देन है।

दिल्ली प्रेस प्रकाशन समूह की पत्रिकाएं 'सुमन सौरभ' और 'चंपक ' का जिक्र करना भी यहां जरूरी है। ये दोनों पत्रिकाएं काफी समय से प्रकाशित हो रही हैं पर उनकी छवि व्यावसायिक हो गई है। चूंकि प्रकाशन भी एक व्यवसाय है इसलिए अब मिशन भाव से बाल पत्रिका निकालना टेढ़ीखीर हो गया है। 'चंपक' पत्रिका अभी भी पशु-पक्षियों को चरित्र बनाकर कहानियां छापे जा रही है और एक तरह से वह टाइप्ड हो गई है। 'स्नेह' भोपाल से निकल रही है पर उसे अब भी अपना मानक प्रसार पाने तथा अपनी पहचान बरकरार रखने के संकट से जूझना पड़ रहा है। निजी संसाधनों से प्रकाशित बाल पत्रिकाओं में इस समय भैरूंलाल गर्ग के संपादन में प्रकाशित हो रही मासिक 'बालवाटिका' पत्रिका अपने शीर्ष स्थान पर है जिसमें श्रेष्ठ रचनात्मक बाल साहित्य के अलावा बाल साहित्य विमर्श की भी अनूठी पहल शामिल है। बाल साहित्य विमर्श के क्षेत्र में शायद यह अकेली पत्रिका है जो अनेक वर्षों से प्रकाशित हो रही है और जिसने अनेक बाल साहित्य पुरस्कार भी स्थापित किए हुए हैं। हर वर्ष यह पत्रिका एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय बाल साहित्य संगोष्ठी भी आयोजित करती है। चलते-चलते अब दो-चार पत्रिकाओं का संदर्भ मैं यहां और दूंगा। ये हैं अल्मोड़ा से प्रकाशित त्रैमासिक बाल पत्रिका 'बालप्रहरी' अलीगढ़ से प्रकाशित 'अभिनव बालमन', राष्ट्रीय बाल भवन से प्रकाशित 'अक्कड़-बक्कड़' तथा प्रधान संपादक श्याम सुशील के साथ शिप्रा, पारुल तथा शिवांक के बाल-संपादन में सीमित प्रतियों के साथ निकली त्रैमासिक हस्तलिखित बाल पत्रिका 'नन्ही कलम'।

इन सभी बाल पत्रिकाओं को अपनी रचना सामग्री तथा साज-सज्जा संवारकर अपनी पाठक संख्या स्थापित करने के लिए एक लंबा रास्ता तय करना है लेकिन आप जानते हैं कि पहला क़दम ही आपके लक्ष्य तक जाने की शुरुआत होती है।

हस्तलीखित त्रैमासिक लघु बाल पत्रिका 'नन्ही कलम' की ख़ासियत यह रही कि यह बच्चों के संपादन में अनगढ़ रूप में शुरू हुई और उसके पंद्रह-बीस अंक निकले जिनमें कुछ अंक तो ख़ासी चर्चा में रहे। श्रीप्रसाद की बुल्गारिया यात्रा के संस्मरण, त्रिलोचन सहित अन्य प्रतिष्ठित बाल साहित्यकारों की हस्तलीखित बाल कविताएं, बच्चों द्वारा पूर्व राष्ट्रपति ए.पी. जे. अब्दुल कलाम को लिखे गए पत्र तथा उनके जवाब, 'नन्ही कलम' के प्रमुख आकर्षक बने। यह एक ऐसा अनूठा प्रयोग था जो बड़े घरानों की पत्रिकाएं भी नहीं कर पाती है।

लेखकों की हस्तलिपि में रचनाएं प्राप्त करना और प्रकाशित करना तो अब गए ज़माने की चीज़ हो गई। इस मायने में, यदि इसे अतिशयोक्ति न समझा जाए तो 'नन्ही कलम' ने, अल्पकाल के लिए ही सही, बाल-पत्रिकाओं में अपना एक अलग इतिहास रचा। ❑

संपर्क : 506 गौड़गंगा-1, सेक्टर-4, वैशाली, ग़ाज़ियाबाद

हमारे गौरव-ग्रंथ



'गांधी ओरडेंड इन साउथ अफ्रीका' का हिंदी अनुवाद 'एक महात्मा का अभ्युदय' (दक्षिण अफ्रीका में गांधी) पुस्तक का उद्देश्य गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका में बिताए गए समय का विस्तृत और जानकारी देने वाला लेखा-जोखा पाठकों के सामने रखना है। गांधीजी की अधिकतर जीवनियों में मौजूद उस समय का विवरण भारतीय स्वाधीनता संग्राम में चौंधिया देने वाली भूमिका की चमक में कहीं पीछे छिपा रह गया है। इसके पीछे यही विचार है कि दक्षिण अफ्रीका में बिताए समय को अलग से कैनवास पर प्रस्तुत किया जाए ताकि पूरे जीवन-दर्शन को जानने-समझने की इच्छा रखने वाले लोगों के सामने वह एक दम सही रूप में प्रकट हो सके। लोग यह जानने को उत्सुक हैं कि एक अंजान युवा भारतीय वकील ने, जो अपनी रोज़ी-रोटी कमाने के लिए दक्षिण अफ्रीका गया था, किस तरह अपने जीवन को एकदम ही नई दिशा में मोड़ दिया और कैसे धीरे-धीरे पहले एक महत्वपूर्ण राजनेता और बाद में 'महात्मा' बन गया। प्रस्तुत पुस्तक में उपनिवेशवादी घटनाक्रम, भारतीयों का आगमन, विरोध का सामना, ट्रांसवाल की घटनाएं, स्वदेश वापसी, फीनिक्स आश्रम, अहिंसक विरोध, सत्याग्रह, हिंद स्वराज, दक्षिण अफ्रीका संघ, गोखले की यात्रा, तीसरा दौर जैसे अध्यायों के माध्यम से कई रोचक और मार्मिक प्रसंगों को जानने का सुअवसर प्राप्त होता है। प्रवास के दौरान के दुर्लभ चित्र पुस्तक के विशेष आकर्षण हैं।

एक महात्मा का अभ्युदय (दक्षिण अफ्रीका में गांधी) : जे.एन. उप्पल अनुवाद : देवेंद्र कुमार, ISBN: 978-81-230-1628-3, मूल्य : 430 रुपये (पेपरबैक)

जन्मदिवस पर विशेष

विश्रामधाम सुषमा का : 'धूमाकुल सुषमागृह ज्यों जल गया'

अनामिका

कोई भी रचनाकार आधा किंवदंती होता है, आधा बंकिम यथार्थ, आधा धुआं, आधा अग्निशिखा—ख़ासकर अपने शहर के लिए, वह भी मुज़फ़्फ़रपुर जैसे 'कॉस्मोपॉलिटन' कस्बे के लिए जो मुज़फ़्फ़रशाह फ़कीरेआलम के नाम पर बसा, दाता कंबलशाह और दाता राजेंद्र शाह की साधनास्थली होने के कारण सूफ़ियाना मिज़ाज के संभ्रांत मुसलमानों की शाइस्ता उपस्थिति से निहाल रहा और 1887 में खुले 'नारायणी' प्रेस, सन् 50 में स्थापित प्रांत के दूसरे बड़े विश्वविद्यालय और जाने कब से फहराती 'सूतापट्टी' के कारण बंगाली, मारवाड़ी, पंजाबी ख़ासकर सरदार और खत्री समुदायों की संवादी उपस्थिति से जाज्वल्यमान। नॉर्दन रेलवे का बड़ा केंद्र होने के कारण यह कुछ कॉन्वेंटमार्का अच्छे स्कूलों का भी केंद्र रहा—'प्रभात तारा', 'सेंट मेरीज़', 'सेंट फ्रांसिस' आदि कई स्कूलों में जबलपुर, खड़गपुर आदि अन्य बड़ी रेलवे-कॉलोनियों से डेनियल बरोज़, मिसेज कूट्स, मिसेज हॉग्स, मिसेज हॉलिंग्सवर्थ आदि विख्यात ऐंग्लो-इंडियन शिक्षक पढ़ाने आईं और वहीं की होकर रह गईं!



ऐसे बड़े व्यापार-केंद्र का बहू-बाज़ार भी बड़ा होता ही है! कई घरानेदार गायिकाएं और गुणी नर्त्तकियां भी यहां की तहज़ीब और भाषा परतदार करने में अपनी बड़ी भूमिका रखती हों, इसमें आश्चर्य नहीं! एक तरफ़ आम्रपाली की वैशाली, दूसरी तरफ़ मिथिला की सीता। मैथिली, बज्जिका, भोजपुरी, उर्दू और खड़ी बोली हिंदी के स्पंदित भाषा-नदों के तट पर कुटिया छवाकर रहने वाली संस्कृत। मुज़फ़्फ़रपुर का यह नैतिक भूगोल संस्कृतिकर्मियों को हमेशा से रुचिकर लगा होगा, तभी खत्री ज़मींदार, कलामर्मी बच्चा बाबू के राज्याश्रय में पं. सीताराम हरिराम दांडेकर और संस्कृत महाविद्यालय के ओजस्वी शिक्षक के रूप में पं. जानकीवल्लभ शास्त्री यहां आए तो यहीं के होकर रह गए!

शास्त्रीजी को मैंने कई जोड़ा आंखों से जाना है—अपने माता-पिता, प्रो. आशा किशोर और प्रो. श्यामनंदन किशोर की आंखों से, अपने सास-ससुर, प्रो. कृष्णा प्रसाद और प्रो. ब्रजकिशोर प्रसाद की आंखों से, उनके अनन्य मित्र, प्रो.मारुतिनंदन पाठक की आंखों से और स्वयं उनकी उन पंक्तियों के आश्रय जो मेरे कवि-पिता मुझे और भैया को रात में थपकियां देकर सुलाते हुए गुनगुनाते थे। उनकी अपनी और अपने पसंद के कवियों की ये झिलमिल पंक्तियां आजतक दुविधा के क्षणों में हमें लालटेन दिखाती हैं, भैया भी कहते हैं कि हमारी असल थाती ये ही हैं और इन जैसी अनेक भास्वर पंक्तियां जो नींद से बोझिल हमारे अवचेतन में पापा ने लगातार बोईं—कुछ अपनी कविताओं से, कुछ औरों की कविताओं से। चूंकि शास्त्री जी पर लिखना है, इसलिए उनकी ही उन काव्य-पंक्तियों का कोलाज पहने जो हमारे अवचेतन में आज तक सिहरती हैं—

'जिन्होंने हो तुम्हें देखा, नयन वे और होते हैं,
जो बनते वंदना के छंद, क्षण वे और होते हैं।'

... ...

उमंगें उछालें, संभाले ये बांहें/लहर का सहारा, सहारा नहीं है!
ज़मीं, आसमां—दूर दोनों यहां से/सुने कौन नग़्मा, ये नारा नहीं है!

... ...

'मैं अटट गंवारिन उपलों-भरी अंगारी/झकझक करती तम से निखोट उजियारी!
कछुई-सी सिमटी रहती हूं अपने में—
ऐसी अठखेली बहती हूं सपने में।
... जीने दे रहा समाज न वृंदावन का,
मरने न दे रहा महामोह मोहन का।

(राधा)

... ...

बरसे वह तेरी सुधा-धार/जग उसको पानी कहे, कहे!
मैं गाऊं तेरा मंत्र समझ/जग मेरी वाणी कहे, कहे! (श्यामा संगीत)

'मस्तिष्क थका दुहरा शब्दावलि मैली
मन डूब धुन्ध में गया, न धड़कन फैली
मेरा घायल श्रम, ध्वनित अनाहत शैली
क्या फिर आक्रोश-भरे यथार्थ ने ढाया?
आख्यात मात, अपना आख्यान सुनाया। (श्यामा संगीत)

... ...

जग बसंत बहार या मल्हार गाए,
छलछलाए दृग, अधर उर मुसकराए,
आग उगले या शिशिर अनुराग बरसे,
मैं अछूते तार में हूं तुम कहां हो?
मैं मगन मझधार में हूं, तुम कहां हो?

(धूप-तरी का किनारा)

... ...

आकाश अनिल में लीन हुआ जाता है,
जल अनिल तेज में दीन हुआ जाता है,
बुझता जाता है तेज डूबकर जल में
जल का विलयन होता धरती के तल में,
औने-पौने तुल रही तुला पर चित की,
करतूत देखती कर्मठ त्रिभुवनजित की।

(राधा)

... ...

काश मैं इस चांदनी-सा व्याप्त होता,
स्वच्छ, निर्मल, विश्व-भर का आप्त होता!
फैलता सम-भाव से जल और थल पर,
एक-सा टूटी कुटी, ऊंचे महल पर...

ये महान पंक्तियां हमारे मन-प्राणों में धूप-छांह, आकाश-अनिल,

जल-थल, बसंत-बहार और 'मल्हार, 'मगन मझधार' और 'धूप-तरी के किनारे', 'टूटी कुटी' और 'ऊंचे महल' आद्विद्वित्वों के बीच एक लक्ष्मण-झूला जैसी पुलिया बना लेने का स्वप्न बुनती रहीं! इनके अलावा 'मेघगीत' नौवीं में हमारे पाठ्यक्रम का हिस्सा था—निराला के 'बादल राग' और पंत की 'बादल' कविता के समानांतर। निराला के बादल-राग का नाद-सौंदर्य और पंत की कविता की 'क्षण-क्षण आंख बदलती' बिंबातुरता का भी चित्त पर प्रभाव पड़ा ही, किंतु मेघों की लय में जो पंक्तियां सबसे ज्यादा घुमड़ती हैं आज तक वे शास्त्री जी की ये पंक्तियां हैं—'उतर रेत में, आक उकासों-भर खेत में पागल बादल/शून्य गगन में व्यर्थ मगन मंडलाता है/इतराता इतना सूखे गर्जन-तर्जन पर झूम-झूमकर निर्जन में क्या गाता है?.../ऊपर-ऊपर पी जाते हैं, जो पीने वाले हैं/कहते—ऐसे ही जीते हैं, जो जीने वाले हैं/इस नृशंस छीना-झपटी पर फट-पटी पर उन्मद बादल/ मुसलधार शतधार नहीं बरसाता है।...

कुपथ-कुपथ रथ दौड़ाता जो पथ-निर्देशक वह है/लाज-लजाती जिसकी कृति से, धृति-उपदेशक वह है/जनता धरती पर बैठी है, नभ में मंच खड़ा है/ जो जितनी ही दूर मही से, उतना वही बड़ा है!

वो आपातकाल का दौर था, ऐसे में शुद्ध प्रकृति प्रगीत से ज्यादा हमें यह तेवरी कविता अच्छी लगती—यह तो स्वाभाविक था! कविता गणित की तरह 'प्योर' और 'अप्लायड'—दोनों हो सकती है, यह बात भी अपने ढंग से अयां हुई जब बाद में शास्त्री जी का ही किया हुआ बाल्मीकि का यह सुंदर अनुवाद पढ़ा—'जो पत्र-पुटों पर टप-टप टपक-टपककर/आता जल, विहगों का दल लपक-लपककर/है उसे पी रहा झुक-झुक, उझक-उझककर/गीले डैने फड़का, सुलगा उलझे पर, /कोई प्यासा, कोई बिना पिए अघाया।/पावस का ऐसा समय सलोना आया।

(मुक्तासकोशं सलिलं पतद्यै/ सुनिर्मलं पत्र पुटेषु लग्नम्/ दृष्ट्वा-विवर्ण च्छिदना विहंङाः/ सुरेंद्र-दत्तं तृषितः पिबांति)

यदि शास्त्रीजी के अपने निकषों, विभिन्न आलोचनात्मक निबंधों में प्रतिपादित उनके अपने सूत्रवाक्यों पर उनकी कविताएं कसी जाएं तो भी रीतिग्रंथों का सायास रचित उदाहरण ये कहीं नहीं जान पड़ेगी, इसी तरह उनके अनुवाद भी 'ज्यों की त्यों' वाली श्रेणी में नहीं आएंगे, पर 'आभासी सत्य' और 'माया' की तरह ये 'तद्रूप तो हैं ही, एकात्म जैसे शिव से शक्ति, अर्थ से लय, कृष्ण से राधा—''मैं रूप जलाकर, नाम मिटाकर आई/आनंद-सिंधु के लिए बिंदु भर लाई!/अपने तन का इतिहास जलाकर आई/कुल का कुल—क्रमिक विकास जलाकर आई!/दैहिक आयाम नहीं, मानस-रस लाई,/ निरुपाधि-निरिंद्रिय-सी केवल मैं आई!''

निरुपाधि, निरिंद्रिय होकर आने वाली यह अनुपम अर्थ-छाया, यह देहातीत काव्य-राधा विद्यापति और सूर की राधा की तरह मांसल और ठोस भले ही न हो, पर रससिद्ध उद्दामता में उतनी ही पगी हुई जरूर है। न सांद्रता में कोई कमी है, न प्रवाह में, न छंदवैभव में, न चित्रायित आभा में, उनकी अपनी 'चिंताधारा' के शब्द उन पर लागू करें तो कहेंगे कि इस कविता में ''अनुभूति की निर्मलता ही नहीं, उसकी अभिव्यक्ति की रंगीनी भी है, भावना की रसात्मक ऋजुता ही नहीं, प्रकाशन की अलंकृत वक्रता भी है।... (यहां) प्रकृति और मनुष्य की तस्वीर आन्तर रस से बनी है। (कालिदासीय शैली में)'' (निराला के काव्य की तरह इसमें) आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का तेज, जल का रस और पृथ्वी की गंध—सब कुछ है... त्रिविध तापों की तीव्र अनुभूति और उनसे मुक्ति का तीक्ष्ण आकांक्षक (प्रसादवाला) करुणाकलित आनंद, (निरालावाला) ओज और तेज और (पंतवाला) माधुर्य। ..एक-एक शब्द जीवंत, प्राणशक्ति से भरपूर.. इस प्रकार प्रयुक्त मानो शक्ति की संभावनाएं अधिक-से-अधिक मुकुलित हो सकें।''

बाद के वर्षों में एक निकष नैतिक भूगोल और स्थान-बोध का भी बना : सफल कविता का काल-बोध उसके स्थान-बोध से छन आता है, आंचलिकता के इस निकष पर कसें तो भी शास्त्री जी सफल कहे जाएंगे—सिर्फ 'गाथा-गीतों' में नहीं, बल्कि राधा जैसे प्राणवान खण्डकाव्य में भी : खुद उनकी समझाई बात आगे बढ़ाएं तो कह सकते हैं कि यदि जयदेव और चंडीदास की राधा 'बङ्गलाक वधू बुकेताक मधु' है, विद्यापति की राधा मिथिला की ललित ललना, सूर की ब्रजबाला तो शास्त्री की राधा खासी तिरहुतिया औरत जो खूब से समझती है—''रागात्मक एकतानता स्थापित कर लेने से जितनी आनंद-प्राप्ति की संभावना है, थोथी छान-बीन के द्वारा उसे अच्छन्न या प्रतिस्थापित कर उसका शतांश भी नहीं पाया जा सकता!''

चित्र को संगीत की देह, संगीत को उसके प्राण समझने वाले शास्त्री जी की कविता में चित्र भावों को आकार देता है और संगीत उन भावों को राधा के नूपुर सज्जित पांवों की गति-गति, पर उनके कथा-काव्य और कहानियां स्थान-बोध से छनते विकट काल-बोध का भास्वर प्रमाण हैं। 'माधुरी' और 'किशोर' में प्रकाशित दो कहानियों के बारे में प्रेमचंद की यह टिप्पणी भी ग़ौरतलब है कि—''पाणिनी-पतंजलि और दंडी-बाण की मुश्किल पढ़ाई के साथ गद्य-पद्य लिखने का यह शौक कोरी उड़ानबाज़ी से भरा हुआ नहीं हो सकता!''

1935-1945 तक के दशक में शास्त्री जी ने जो 55 कहानियां लिखीं, उनमें अधिकतर स्त्री-जीवन की विडंबनाओं को संबोधित हैं। 'मालन' में अनमेल बाल-विवाह के बाद पनपे प्रेम और तदजन्य आंतरिक बाह्य संघर्ष की पृष्ठभूमि में उभरी स्त्री-तेजस्विता का सप्राण आकलन है तो 'भाई-बहन' में पिछड़े वर्ग की उस अनाथ युवा लड़की के संघर्षों का महीन चित्रण जिसके बारे में किसी की कल्पना ही नहीं जाती कि उसके 'गदराए' शरीर के पार उसका एक सोचने-समझने वाला संवेदनशील मन-मस्तिष्क भी है! 'रोदन का राग' की बाल-विधवा हो या विनाश के पथ पर भी परित्यक्ता बंगालिन, वेश्या बनने को अभिशप्त पन्ना हो या 'मीना' की कामकाजी औरत, बहु विवाह और पोडसी-सेवन के नुस्ख़े की शिकार पंद्रह वर्षीय प्रभा, 'अभिनेत्री' की मज्जक जान या 'अपर्णा' की अंधी भिखारिन—कथाकार को बेहतर समाज की नींव डालने वाली सचेतन, सप्राण किरदार स्त्रियां ही दीखती हैं।

शास्त्री जी को 'जातिवाद' के संकीर्ण दायरे में देखने वालों को उनकी कहानी 'पंडित जी' पढ़नी चाहिए! बाढ़ के नदी पार से पंडित जी जगमोहना को तंबाकू लाने भेजते हैं और उसके डूब जाने की ख़बर से उन्हें उसकी नहीं, अपने डूब गए पैसों की फ़िक्र सताती है। और जब वह तंबाकू लेकर जीता-जागता लौट आता है तो इसे पंडित जी अपना आशीर्वाद घोषित करते हैं—''सोई कहूं, ब्राह्मण का आशीर्वाद। यह आज्ञाकारी बालक कभी डूब भी सकता है।'' बाद के वर्षों में शास्त्री जी ने जो कथाकाव्य लिखे, उसके बारे में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का कहना था कि जिस तरह न्यू सिग्नेचर्स ने प्रसिद्ध कवि येट्स ऑडेन, लीवीस, स्पेंडर आदि सामाजिक दार्शनिकता से सामान्य विषयों का उद्धर्वपातन कराते हैं—मनुष्य की सनातन दुर्बलताओं के प्रति सजग सहानुभूति रखते हुए— हिंदी की 'स्ट्रॉबेरी और क्रीम' कविता के परे जाकर सामान्य चरित्रों के इर्द-गिर्द कविताएं शास्त्रीजी ने 'गाथा' में लिखीं और यहां ग़ौरतलब बात यह है कि इनकी आंचलिकता कहीं-कहीं तो रेणु में रंग की है और उसकी व्यंग्य-धार शरद जोशी से आंखें मिलाती हुई-सी, इस प्रसंग में 'हरिहरक्षेत्र का मेला' और 'भिखारी नाई' वाले उद्धरण ध्यातव्य हैं—

''रूप-हाट की बाट इधर, हर शख़्स खोजता हर/ सर के बल चल रहा, तल रहा गर्म-गर्म अरमान/ खुदा खा रहा ख़ौफ़/ ताकता उसका मुंह मेहमान/ हो जाते जज़्बात आप ही आप मगर काफ़ूर/ जब-जब दिख जाती करीब से जन्नत की मायूसी/ ताजमहल में रखी हुई ज्यों जौ-गेहूं की भूसी!''

"श्रेष्ठ किताबें हिंदी लिट्रेचर की कितनी आईं/ गुलबकावली से ले तोता-मैना के सब भाग/ सिंहासन-दर्तीसी, प्रेम-छत्तीसी, शीशी-कार्क/ और चंद्रकांता-बाइबल की बच्ची, मनु की ताई/ कुछ बंगाली कहते—रवि-सा कवि हुआ न पहले/ मैं कहता, पहले ने राधेश्यामी सीरिज पढ़ ले/ नमक-मिली भुर्रियां वहां क्या यहां नानखटाई/ 'शां' हांकेंगे डींगे, दिखा जब तक न भिखारीनाई।"

यहां भिखारी ठाकुरी की गद्यमंडली और विश्वविद्यालय की पाठ्यक्रम समितियों की उठा-पटक के हजार बांके प्रसंग सामने छुरछुरी सी छोड़ जाते हैं। जैसाकि गुरुवर मारुतिनंदन पाठक ने लिखा, "उनकी वेदांत दृष्टि इस पंतत्ववात्मक विश्व-जीवन का कहीं निषेध नहीं करती ...धरती और आकाश यहां एकान्वित हो गए हैं और रूप-रस-गंध-स्पर्श को आयंत किए हुए हैं। इस एकान्विति और आयंतना से अनुभूतियां तीव्र हुई हैं और संवेदनाएं रागात्मक! यह पश्चिमी रोमांटिक कविता का अनुभूतिसिक्त गहन एकांतिक क्षण भी उपज नहीं है ... चांद आकाश में विहरता हो तो विहरता रहे, लेकिन चांदनी तो अपने संपूर्ण ऐश्वर्य के साथ भूमि पर आनंद बिखेरकर जो सौंदर्य-सृष्टि करती है, वह श्रम की चेतना से निर्मित हुई है।"

सरल शब्दों में कहूं तो शास्त्रीजी का आत्मन बहना हुआ-सा, सर्वसमावेशी आत्मन है—खासकर कविता में! पर जीवन में इनकी पसंद-नापसंद बहुत गहरी थी और वैशिष्य-बोध भी थोड़ा प्रबल था—ऐसा लोग बताते हैं। गर्वीली गरीबी के अपने अलग रंग होते हैं, कलाकारों की और गरीबों की तबीयत में तो ठाठ और श्रम की गरिमा होनी ही चाहिए। कालिदास, निराला और पृथ्वीराज कपूर को अपना आदर्श समझने वाले व्यक्ति को थोड़ा एटिच्यूड, थोड़ा नख़रा शोभता भी है—वैसे ही जैसे सुंदर, झनकाट बच्चे को डिठौना। बचपन इनका गहन अभाव में बीता था, कम उम्र में मां और फिर पहली पत्नी का बिछोह, विद्वान पिता की कठोर तानाशाही, भारी शरीर, वह भी नीचे से टूटा हुआ, शताधिक गौओं, कुत्ते, बिल्लियों और अच्छे-बुरे पिल्लगूओं का विशाल संयुक्त परिवार और थोड़ी तेज़ाबी जुबान—एक + एमस् + अपि +अनर्थाय, किम् यत्र चतुष्टयम्! बहुत भटककर मिली नौकरी, (संस्कृत के) योग्य शिष्यों का अभाव, बराबरी में बात कर सकने वाले का अभाव, कस्बे में रहते हुए सही प्रकाशक नहीं ढूंढ पाने की मजबूरी, गीत-विद्या पर छंदयुक्त कविता का बढ़ता प्रभाव, कवि-सम्मेलन संस्कृति का घनघोर विघटन, नाद-युग का ही कठोर विघटन और प्रोफेसरी से अवकाशग्रहण के बाद सरकारी-गैर सरकारी अनुदानों की विवश मुंहतक्की उनके संवेदनशील आत्मन् पर लगातार ही गुम चोटें दर्ज करती हुई होगी...इसलिए बाद के वर्षों में जब भी उन्हें देखा, 'किंग लियर' वाले हल्के विच्छिन्न भावबोध में देखा, फिर भी मन में कहीं किसी पपीहे की टेर-सा देर तक गूंजता रहा—"Ripeness is all." और जब भी यह गूंजा, पास के भींगे हुए झुरमुटों से एक बहुत मदिर गंध उठी—बेला की, जो उनका प्रिय पुष्प होगा क्योंकि इसी नाम की एक लघु पत्रिका भी अपने सीमित साधनों से ये अंत तक निकालते रहे, हालांकि चित्त पर एक अजब तरह का व्यर्थता-बोध छाया रहा—

तुम बूझे क्या! तुम जले क्या/आज भी तो तिमिर ही छाया हुआ,
पुंज-पुंज प्रकाश है 'छाया' हुआ/ ज्ञानियों का ज्ञान लो, माया हुआ...
और तुम चुप टिमटिमाते ही गए/दग्ध का अवशेष सुलगाते गए!

कुल मिलाकर कहूं तो शास्त्रीजी से मेरा नाता वही था जो किंवदंती का कानों से होता है और अचकचाहट का आंखों से। उन्हें मैंने दो काल-खंडों में जाना—बाइस वर्ष की अवस्था से पहले यानी पिता के सान्निध्य में और फिर विवाह के बाद, अपने ससुरजी के सान्निध्य में। मेरे पिता उनके छोटे भाई ही थे। मेरी मां के शोधप्रबंध का एक तेजोमय अध्याय शास्त्री जी कविता के भाषिक अवचेतन की धूप-छांव तलाशता है! और ससुर उनके प्रिय शिष्य, अध्येता और अंग्रेजी अनुवादक (भाग्य की विडंबना यह कि उनके महाप्रयाण की तीसरे दिन उनके 'कालिदास' नामक उपन्यास का ससुरजी द्वारा किया हुआ) तन्मय अनुवाद एन.बी.टी. से प्रकाशित होकर आया।

मेरे पिता मुझे विदा भी न कर सके, महज़ पचास साल ही रहे इस धरती पर, पर आरंभिक बाईस वर्ष उनकी छाया में अद्भुत गुज़रे। अपने कवि पिता श्यामनंदन के साथ ब्रह्ममुहूर्त में उठती थी। नहा-धोकर दोनों बाप-बेटी टहलने निकलते थे। छुट्टियों में भैया भी अपनी बड़ी दार्शनिक स्थापनाओं... के साथ हंसता-खेलता चलता। लौटते वक्त, धूप अगर तेज़ हो जाती, पिताजी मुझे गोदी उठाए हुए कभी-कभी शास्त्रीजी के आश्रमनुमा घर के छायादार प्रांगण में ले आते। (शास्त्री जी की पत्नी का नाम भी छाया ही है।) चिलचिलाती धूप में छाया का रंग कुछ और होता है और सुबह की चिलबिली धूप में कुछ और। इसी तरह शाम की कवि गोष्ठियों में शास्त्रीजी का रंग कुछ और होता था और सुबह की उस अंतरंग गपशप में बिलकुल दूसरा।...उस समय पिताजी और शास्त्रीजी के बीच क्या शास्त्र-पुराण छिड़ता, यह तो मुझे उतना याद नहीं क्योंकि मेरा ध्यान ज्यादा उन कुत्ते-बिल्लियों और गायों पर रहता जो तरह-तरह की भाव-मुद्रा बनाए हुए उनके आस-पास मचलते होते। वहीं मैंने पहली बार देखा, खिड़की की छड़ों के बीच देह समाएगी कि नहीं, इसका आकलन बिल्ली मूंछों से छड़ों के बीच की दूरी मापकर करती है!...शास्त्रीजी ने ही गुरु-भाव में मेरा इस बात पर ध्यान खींचा—'देख रही हैं, बिटिया?'

शास्त्रीजी जानते थे—अगाध और विराट होने की पीड़ा, किन्हीं जो खिड़कियों के बीच कहीं नहीं समा पाने की पीड़ा—जैसे कि संक्रमणकाल की हर आत्मा जानती है—

जिसके भय से डरकर भागे/बड़े-बड़े साधक-संन्यासी,
उस दुविधा के ही त्रिशूल पर/मेरे मन की नगरी काशी!
वह तो पौरुष का अभियानी/दोनों तट में छूट गया जो,
मेरे सौ जलयान बहुत कम/पा ऐसी मझधार सकें जो,
मेरे सौ-सौ गान बहुत कम,/ कम तुझको साकार सकें जो!
(श्यामनंदन किशोर)

यही था शास्त्रीजी का 'निराला निकेतन' जहां कवि निराला और पृथ्वीराज कपूर—जैसे महामना उहरते थे। अंत-अंत तक यह शहर, राज्य और हिंदी-प्रदेश के सब छोटे-बड़े लेखकों का 'खुला घर' बना रहा। (इसका श्रेय छाया जी को भी जाता है! कवि की पत्नी होना डॉक्टर की पत्नी होने से कम बड़ी चुनौती नहीं है: हरदम दरवाज़ा खुला रखना, और 'सीता की रसोई' जारी रखना मनहर तपस्या है: मन लगा रहता है पर श्रम भी पड़ता है! और साधन भी, ज़ाहिर है, सीमित ही रहते हैं!) यह बात मैं अपनी मां की मगन दिनचर्या के आधार पर भी कह सकती हूं। संगीत और संस्कृत के इस उद्भट विद्वान और अनुपम कवि-गद्यकार का स्वाभिमान उन्नत था और आत्मविश्वास गहरा, शायद इसलिए उनका गुरु-भाव हरदम जगा रहा था! उनकी वाणी में गुरुवाला तेज भी था। वे स्वयं को उसी भाव से देश-समाज की संपत्ति जिम्मेदारी मानते थे, जिस भाव से बॉदलेयर। (बॉदलेयर के विषय में यह घटना तो प्रसिद्ध ही है कि बगीचे में बेचैनी से टहल रहे थे जब विश्वयुद्ध के एक घायल सिपाही ने उनसे पूछा कि आपकी भी तो कुछ राजनीतिक जिम्मेदारी होगी। इस बात पर बॉदलेयर बोले—मैं ही वह अनुपम शय हूं जिसकी रक्षा में युद्ध लड़ा जा रहा है, मैं देश की संस्कृति हूं। बॉदलेयर वाले इसी तेज के आश्रय शास्त्री जी इतनी निर्भीक टिप्पणियां कर पाए—मैंस लाठी की, न पंचों की चले, हड़प जाओ, हाथ जिसके जो लगे/नीति जाए नरक में, संसार यह, दंड नीति प्रचंड

का अधिकार यह।('पुरुषार्थ' सर्ग)

उनकी गीति-नाटिकाएं और उनका महाकाव्य 'राधा' भी स्त्री अध्ययन मंडल के लिए गहन अध्ययन का विषय है। छायावादी कविता ने 'इंपॉसिबल शी' की जो अवधारण दी, शास्त्रीजी की नायिकाएं उनसे अलग हैं। राधा भी यहां गोबर पाथती है, और 'उपलों' के आस-पास बुना गया सुंदर चित्र 'प्रणय' सर्ग में उभरता है। स्त्री-जीवन की इस गहरी विडंबना की समझ गीति-नाटिकाओं में भी टिमकती है—अहिल्या, इंदुमती आदि नायिकाओं के सिवा उनके उपन्यास 'कालिदास' की नायिका, विद्योत्मा भी हाड़-मांस की बनी तेजस्वी स्त्रियां हैं। समाज की बृहत्तर विसंगतियों की भी प्रखर समझ उनमें है—

असंगतियां वर्ण आश्रय दाय-सी, सिंह प्रखर-नखर कि आंखें गाय-सी
विषमताएं विश्व की ललकारतीं, तम तरंगें तट-निकट सिर मारतीं
गर्व इनका खर्वकर, भू-नभ-हिला, उठ, कड़क, इनसे तड़ित आंखें मिला।

आत्मदीप्त ये स्त्रियां आस-पास सबको उदात्त भावों से स्पंदित रखती हैं।

शास्त्री जी के साथ क्लासिक छायावाद का अंतिम सितारा क्षितिज के पार हो गया। शास्त्रीजी बहुत शास्त्रीय ढंग के रोमांटिक कवि थे—एक तरह से रोमांटिक रेक्लूज जिन्होंने 'लोक' और 'शास्त्र' के प्रति अपनी प्रतिबद्धता कायम रखी पर सत्ता के गलियारों से हरदम दूर रहे। प्रकृति और परमतत्त्व की सत्ता के पार एक ही सत्ता थी—'जनसत्ता' जिसका खयाल उन्हें रहता था। कोई भी, कभी भी उनसे मिलने जा सकता था। पुराने आश्रमों में गायें हिरण-विरण तो मिलते हैं, कुत्ते-बिल्लियां का ऐसा बाहुल्य नहीं मिलता जैसा उनके यहां मिलता था। यह बात अपने ढंग से व्यंजक है। रोमांटिक पशुओं के साथ घोर गैर-रोमांटिक पशुओं का अजब-गजब संयुक्त परिवार था यह! महादेवी वर्मा के पशु-परिवार में इसकी झलक देखी जा सकती है।

लेकिन कविता में (और उपन्यासों में भी) द्वित्वों का मेटाफिज़िकल समायोजन उनके यहां नहीं के बराबर है। एक ख़ास तरह के शुद्धतावाद के वे पोषक थे। उत्तर-छायावादी कवियों और गीतकारों ने आधुनिकतावादी कविताएं भी लिखीं—खासकर बिहार में—प्रभात, नेपाली, श्यामनंदन किशोर, हंसकुमार तिवारी, गोपीवल्लभ सहाय, राजेंद्र प्रसाद सिंह, सत्यनारायण आदि लोकप्रिय गीतकार थे पर छंदेतर भी इन्होंने काफी लिखा। शास्त्री जी ने निराला के इतने करीब होते हुए भी छंदबद्ध रचनाएं ही ज्यादा लिखीं और छंदों पर उनकी पकड़ उतनी ही गहरी थी जितनी छंदों की उन पर। दोनों का जोड़ा कभी नहीं टूटा। इसीलिए शायद माचवे जी ने उन्हें अपनी ही अदा का कवि कहा। बचपन स्मृतियों का 'फिक्सड डिपॉज़िट' होता है, उस समय का सुना-गुना ही जीवन-भर का पाथेय बनता है! जैसे निराला जी के काव्यचित्त पर बांग्ला कविता की छाया थी, शास्त्रीजी के काव्यचित्त पर संस्कृत कविता की। छंद ही संस्कृत में कविता के प्राण कहे गए हैं। छंद-मीलित होने का दूसरा कारण यह हो सकता है कि शास्त्री जी रेडियो-युग के महानायक थे जहां नाद-गुण ही श्रोताओं के मर्मभेदन का सबसे बड़ा कारक होता है; कविता चैन की बंसी बजाती दीखती जरूर है पर वह 'चैन' बंसवारी में पांव फैलाकर बैठे हुए व्यक्ति...का चैन नहीं, बेचैनियों के फण पर पांव जमाने की कोशिश करता हुआ चैन है; श्रोता यहां आश्चर्य ही कर सकता है—कैसे इतनी कठिन रागिनी कोमल सुर में गाई/किसने बांसुरी बजाई? ❑

संपर्क : बी-5/3, मल्टीस्टोरीड अपार्टमेंट, आर.के. पुरम, सेक्टर-13, नई दिल्ली-110022

दूसरा तलाक़

पृष्ठ 32 से आगे

बेटी जुगाली करते-करते किसी अंजाने ख़ौफ़ से डरकर घबराई-घबराई सी अचानक उठकर दूर तक दौड़ती चली जाती है।

कभी दाएं है तो कभी बाएं।

कभी हवाओं को सूंघती है।

सोचती है।

कभी पेड़ों के नीचे साए में बैठी ऐसा महसूस करती है जैसे वह गर्मी में झुलसी जा रही हो और कभी झाड़ियों, टहनियों से छनकर आती धूप भी ठंडी-ठंडी सी लगती है।

ऐसे ही डरते-डरते कभी लम्हे, साल बन गए।

और कभी साल सुकड़कर लम्हों में बदल गए।

और ऐसे लंबे होते या सुकड़ते लम्हों के बीच उसका बेटा पला, बढ़ा, पढ़ा, जवान हुआ और अच्छी नौकरी पर जा लगा।

और फिर शादी हुई।

इस वक्त यह औरत अपने घर के ड्राईंगरूम में बैठी अपनी साड़ी का फटा हुआ बोर्डर इस तरह सी रही है जैसे ज़िंदगी की शाम तक पहुंचकर, उम्र भर खाए ज़ख़्मों को सीने की कोशिश कर रही हो।

यह सिलाई करते हुए वह अपने-आप में इस तरह खोई थी कि उसे पता ही नहीं चला कि कब उसका बेटा उसके सामने आकर बैठ गया। वह तो लाल चूड़ा पहने उसकी बहू ब्रीफ़केस को पहियों पर चलाते हुए कमरे में आई तो उसकी आवाज़ को सुनकर उसका ध्यान बंटा।

"कहां की तैयारी है?" उसने मुंह से कुछ बोले बग़ैर इशारे में ही बेटे से पूछा।

"हमने सोचा है नए फ्लेट में अलग जाकर रहें", बेटे ने कहा और जाने के लिए उठकर खड़ा हो गया।

मां ने बेटे की तरफ़ देखा।

बाप की दूसरी शक्ल, वही क़द, वही नैन-नक्श, वही आवाज़।

उसकी ख़ामोश नज़रें उसे घर की दहलीज़ पार करते हुए देखती रहीं।

वही चाल, बिल्कुल वही अंदाज़।

तलाक़ के काग़ज़ थमाने के बाद उसका पति भी कभी ऐसे ही, पीछे की तरफ़ देखे बग़ैर लंबे-लंबे डग भरता बाहर चला गया था।

और उसे लगा जैसे...

जैसे उसके बाप ने उसे दूसरी बार तलाक़ दे दिया हो।

तभी उसने उंगली में दर्द महसूस किया। उसे पता ही नहीं चला था कि सुई कब उसके पपोटे में चुभ गई थी वहां से ख़ून रिस रहा था। उसके अरमानों का ख़ून। ❑

संपर्क : ए-402, बीटा-1, ग्रेटर नोएडा-201308

आचार्य शास्त्री की याद

उद्‌भ्रांत

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री प्रसाद, निराला और पंत वाली छायावादी वृहद् त्रयी के बाद महादेवी, रामकुमार वर्मा के साथ बनने वाली लघु त्रयी में परिगणित किए जाते थे। मैंने छात्र जीवन में ही कॉलेज के पुस्तकालय में उपलब्ध उनके कविता-संग्रह पढ़ लिए थे और उनका प्रशंसक हो गया था। 1965 के आसपास कानपुर में 'वासंती' संस्था द्वारा आयोजित एक कवि सम्मेलन की अध्यक्षता करने पधारे तो उन्हें सुनने का भी अवसर मिला। उनका काव्य पाठ बड़ा मधुर था और उसमें उनके 'शास्त्री' उपनाम वाली शास्त्रीयता भी झलकती थी।

वर्ष 1979 में मुज़फ़्फ़रपुर गया तो राजेंद्र प्रसाद सिंह के खबड़ा रोड स्थित आवास पर ठहरने के बाद उनसे मिलने चतुर्भुज स्थान पहुंचा तो मालूम हुआ कि वे शहर से बाहर थे। चतुर्भुज स्थान के नज़ारे ने भी चकित किया। मुझे उस स्थान की विशेषताएं पहले नहीं ज्ञात थीं। यह भी देखा कि उनके विशाल आवासीय परिसर में अनेक गायें, कुत्ते, बिल्ली भी पल रहे थे। पशुओं के प्रति ऐसा प्रेम महादेवी जी में ही देखने को मिला था। वर्ष 1988 में जब अपने नवगीत संग्रह 'हिरना कस्तूरी' को सर्जना प्रकाशन के बैनर से स्वयं प्रकाशित कर रहा था तो सोचा कि इस पर शास्त्री जी का अभिमत भी मिले तो अच्छा रहेगा। मुज़फ़्फ़रपुर निवासी नवगीत के शलाका पुरुष भाई राजेन्द्र प्रसाद सिंह से अच्छे संबंध थे। मैंने पुस्तक के छपे फ़र्मे उन्हें भेजते हुए लिखा कि इन्हें पढ़कर शास्त्री जी को दे दें ताकि उनका भी अभिमत प्राप्त हो जाए। ऐसा तब के अर्थ-संकट के दिनों में डाक खर्च बचाने के लिए किया गया था।



शास्त्रीजी के साथ लेखक एक साक्षात्कार के दौरान

राजेन्द्र भाई ने तो अपना अभिमत भेज दिया था लेकिन जब कई दिनों तक शास्त्री जी का पत्र नहीं मिला तो मैंने उन्हें लिखा। जवाब में उन्होंने सूचित किया कि पुस्तक के फ़र्मे राजेन्द्र भाई ने दिए ही नहीं थे। उस पत्र से कुछ ऐसी ध्वनि निकलती थी कि राजेंद्र जी और शास्त्री जी के बीच बोलचाल नहीं है। तब समझ में आया कि स्थानीय स्तर पर उनके संबंध मधुर नहीं थे और इसीलिए राजेन्द्र जी ने मेरी किताब के फ़र्मे उन्हें नहीं भिजवाए थे। वर्ष 2005 में विशेष रूप से शास्त्री जी से ही मिलने मुज़फ़्फ़रपुर गया। बहुत वृद्ध हो गए थे। कहीं आते-जाते नहीं थे। उनकी वृद्धा पत्नी छाया जी भी मिलीं। मेरे साथ दूरदर्शन के केंद्र निदेशक रविशंकर त्रिपाठी अपने कैमरामैन और कार्यक्रम सहायक के साथ। मैंने शास्त्री जी से कुछ सवाल पूछे। उन्होंने निराला जी से संबंधित स्मृतियां ताज़ा कीं और मेरे अनुरोध पर उस अवस्था में भी तरन्नुम से एक गीत सुनाया, जिसे बिना उनकी जानकारी में आए, कार्यक्रम सहायक अश्विनी कुमार ने रिकॉर्ड कर लिया था।

राधा पर केंद्रित प्रबंध काव्य 'राधामाधव' पर 16 दिसंबर 2005 को अपना अभिमत टाइप करवा कर उन्होंने भेजा था, जिसे पुस्तक की भूमिका में उद्‌धृत किया है। पाठकों की जानकी के लिए उसे यहां प्रस्तुत कर रहा हूं—"युगों से राधा विशुद्ध प्रणय की पहचान रही हैं। अनसूया, राधा और मीरा सब एक ही हैं; मान्यता ऐसी बन चुकी है कि आराधना का ही चरमबिंदु राधा हैं। मैं अपनी राधा (महाकाव्य) के बारे में कुछ लिखना आवश्यक नहीं समझ रहा; वह एक अलग ही चीज़ है। "श्री उद्‌भ्रांत ने अपने मुक्तछंद में लिखे सात सर्गों के प्रबंधकाव्य में स्वयं को वैदिक वाङ्मय से लेकर आज की हिंदी और उड़िया के धर्मवीर भारती एवं रमाकांत रथ से समीचीन स्तर पर सजग भावाभिव्यक्ति के साथ सुपरिचित बताया है। कुछ नयापन देने का उनका ध्येय कविवर 'हरिऔध' के अभीष्ट से सर्वथा भिन्न है।

"उन्होंने प्रेम-दर्शन को अनुभूत बनाकर अभिव्यंजित करने का श्लाघ्य प्रयास सर्वत्र किया है। उनके खुद देखे हुए प्रूफ़ों से पता चलता है कि किस तरह आख़िरी प्रूफ़ में भी कुछ बदल देने की लेखकीय सत्यासक्ति का मोह वे छोड़ नहीं सके हैं। एक जगह है : "मन का कोई छोटा-सा कोना भी/ यदि खाली होता तो उद्धव जी!/आपकी इस बेशक़ीमती ज्ञानगठरी को,/ले जा कर वहीं हम/ सुरक्षित रख देते।" 'बेशक़ीमती' को हटाकर उन्होंने 'अति मूल्यवान' करने की सलाह दे रखी है; पर 'ज्ञानगठरी' तत्सम और देशज का योग है, इसलिए यहां 'बेशक़ीमती' व्यंग्य की ख़ातिर दो तत्सम शब्दों से कहीं ज़्यादा मौजू है लेकिन एक दूसरी जगह 'महारत' के स्थान पर 'असाधारण पूर्णता' अधिक उपयुक्त है। एक अन्य स्थान पर है : "कोई नारी गिरे बेखुदी में।' इसे बनाया गया है 'गिरे होश खोकर', पर 'होश खोकर' निपट निरानंद गद्य हो गया है। ब्रजभाषा में रहकर 'आधीन' तो चल सकता है, वही यहां पर चलना भी चाहिए : "राधा तू बड़भागिनी/कौन तपस्या कीन्ह?/तीन लोक तारण तरण/सो तेरे आधीन!"

उक्त बहुश्रुत पंक्तियां हमारी समृद्ध परंपरा के किसी भक्त कवि की जान पड़ती हैं। बचपन से उन्हें सुनता आ रहा था। इस काव्य के प्रकाशन के समय अनेक विद्वानों से जानने की कोशिश की, किंतु किसी से रचयिता का नाम नहीं मिल सका। आचार्य शास्त्री ने भूलवश ये पंक्तियां मेरी समझ लीं—शायद वृद्धावस्था और अस्वस्थता के चलते। ये उस महाकवि के शब्द थे, जिसने अपनी विरल सांस्कृतिक रचनाओं द्वारा छायावादोत्तर त्रयी में अपना प्रमुख स्थान सुनिश्चित किया और साहित्य की सभी विधाओं में महत्व का काम करते हुए डेढ़ दर्जन काव्य कृतियों के अतिरिक्त बीसवीं सदी के 'कामायनी', 'प्रियप्रवास', 'साकेत' और 'उर्वशी' जैसे महाकाव्यों के समतुल्य सात बड़े सर्गों में विराटकाय 'राधा' महाकाव्य की रचना की। मेरे कवि का अभिभूत होना स्वाभाविक था। शास्त्री जी के निधन पर साहित्य अकादेमी में हुई शोकसभा में नामवर जी ने कहा था कि शास्त्री जी के गद्य पर लोगों का ध्यान नहीं गया है, जो बहुत महत्वपूर्ण है। आशा है हिंदी आलोचना अब इस कमी को पूरा करेगी। ❑

संपर्क :- बी-463, केन्द्रीय विहार, सेक्टर-51, नोएडा-201303

संस्मरण

समय के हाथों आदमी भी बंध जाता है

वरुण भारती

उन दिनों मैं बारहवीं में पढ़ रहा था। परीक्षाएं होने वाली थीं। मैं फुलवरिया गांव से दूर मुज़फ़्फ़रपुर में पढ़ने के लिए सन् 2007 में आया। वहीं आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री भी रहते थे। मैंने अपने दादा (रामदेव 'अरुण') से शास्त्री जी का नाम बहुत आदर भाव से सुना था। मुझे उनसे एक बार मिलने और उनको सुनने की इच्छा हुई। जब मैं एक दिन छुट्टी में घर गया, तो दादा जी बोले—'अब तो तुम मुज़फ़्फ़रपुर में रहते हो, शास्त्री जी से कभी जाकर मिल लेना। अख़बार में हमेशा ख़बर आती रहती है कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है। मैंने मिलने का निश्चय मन-ही-मन कर लिया।

वह शुभ घड़ी आ गई, जब मैं छायावादोत्तर काल के एक महान कवि से मिलने जा रहा था। सन् 2008 चैत्र का महीना था। उस समय मुझे साहित्य-संगीत-कला की उतनी समझ नहीं थी, फिर भी शास्त्री जी को एक बार देखने की इच्छा थी। मैंने वहां एक सज्जन से पूछा, "आप जानते हैं जानकीवल्लभ शास्त्री कहां रहते हैं, उनका पता बता सकते हैं?" उसने कहा—"वह तो चतुर्भुज स्थान मुहल्ले में रहते हैं।"



मैं पता करते-करते चतुर्भुज स्थान के चौराहे पर पहुंच गया। शाम का समय था। सोचा कि शास्त्री जी से मिलने जा रहा हूं तो उनके लिए कुछ ले लूं। मैंने पेड़ा खरीद लिया। साइकिल उठाकर बढ़ा। आगे बढ़ने पर अचानक एक मंदिर दिखाई पड़ता है, ठीक उसी के सामने 'निराला-निकेतन' का बड़ा सा बोर्ड दिखा, यहां आकर मुझे सुकून मिला।

मैं साइकिल से उतरा और 'निराला-निकेतन' के द्वार पर खड़ा हो गया द्वार खटखटाया तो कुछ देर में उनके एक सेवक ने दरवाज़ा खोल दिया। मैंने उससे पूछा "मैं शास्त्री जी से मिल सकता हूं?" उसने कहा "हां जाकर मिल लीजिए।" मैंने द्वार के अंदर प्रवेश किया, उनके भव्य-भवन एवं परिसर की भव्यता को देखकर मैं चकित रह गया। आवासीय प्रांगण में उनके पिता जी का स्मारक, साहित्य-प्रसिद्ध पुष्प जैसे—सूर्यमुखी, बेला, चमेली, गुलाब, रजनीगंधा, जुही, शेफ़ाली, बकुल, अपराजिता एवं संध्या आदि, वृक्षों में आम, लीची, नीम, बरगद, इमली, कदंब, कटहल, पीपल आदि लगे थे। इस मनभावन 'निराला-निकेतन' से याद आ रहा था रवींद्रनाथ टैगोर का 'शांति-निकेतन'।

अचानक दूर से ही मुझे शास्त्री जी बैठे दिख गए। उनका सेवक बोला "जाकर मिल लीजिए।" आगे बढ़ने पर देखा कि दस-बारह गाएं नाद पर बंधी चारा खा रही थीं। मुझे काफी सुखद अनुभव हुआ, एक कवि सचमुच जीवन से जुड़ा होता है। शास्त्री जी के परिसर एवं भवन को देखकर मंत्रमुग्ध हो गया।

शास्त्रीजी पलंग पर बैठे हुए, धोती को सीधा कमर में लपेटे हुए, मटमैले रंग के खादी का कुर्ता पहने थे। पलंग पर हिंदी का अख़बार और 'बेला पत्रिका' रखी हुई थी। ठीक उनके सामने दीवार पर बड़ा सा आईना लगा था, वे बार-बार उस आईने में अपना चेहरा देख रहे थे। देखा शास्त्री जी कि गोद में कुत्ते के बच्चे उछलकूद कर रहे हैं। दो बड़े कुत्ते नीचे बैठे हैं। मैंने जैसे ही सीढ़ी चढ़कर शास्त्री जी के पास जाना चाहा उतने में एक कुत्ता भौंकते हुए मेरी ओर बढ़ा। मैं सहम गया, पर शास्त्री जी उस कुत्ते को डाटते हैं—"चुप रहो अपने ही लोग हैं" सचमुच कुत्ता चुप होकर बैठ गया। मैंने शास्त्री जी का चरण स्पर्श किया। उन्होंने मेरी पीठ थपथपायी। मैं उनकी हथेलियों की छुअन से गद्गद् हो गया।

शास्त्री जी ने मुझ से पूछा "आप क्यों आए हैं?" मैंने कहा "आपके दर्शन करने।" उन्होंने कहा, "बैठ जाइए"। मैं सहजतापूर्वक कुर्सी पर बैठ गया और धीरे से अपने बैग से पेड़े का डिब्बा निकालकर अर्पण किया। उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। हंसते हुए कहा, "आप मेरे लिए मेवा लाए हैं"। उसे खोला और बोले—"इतने ढेर सारे मेवे।" फिर वे अंदर पुकारते हैं—"बहू-बहू देखो ये मेरे लिए मेवा लाए हैं।" तभी अंदर से एक वृद्धा आईं। मैंने उठकर उनका चरण स्पर्श किया। ये शास्त्रीजी की पत्नी थीं, जिन्हें वह 'बहू' कहते थे। उन्होंने कहा—"बहू इनके लिए फल व मिठाईयां लाओ"। मैं शास्त्रीजी की सहजता से अभिभूत हो गया। वे मेरे लिए एक थाल में सेब, अनार के दाने एवं रसगुल्ले लाईं।

मैंने शास्त्री जी का घर के शुभ प्रसाद खाया। कुछ समय बाद देखता हूं कि वे डिब्बे से बिस्कुट निकाल कर कुत्ते को दे रहे हैं और बता रहे हैं कि "ये इनके बच्चे हैं। शास्त्री जी बताने लगे कि जब मैं लगभग आधी रात को कुछ लिख रहा था, तभी अचानक मेरे मुख्य द्वार में कुत्ते का एक बच्चा आकर फंस गया। वह ज़ोर से चिल्लाए जा रहा था। मैंने बहू को जगाया और लालटेन लेकर गया तो देखा यह कुत्ता उसमें फंसा था। उसे निकाल दिया और वह अंदर आ गया और मेरे घर पर ही रहने लगा। ये जितने भी कुत्ते के बच्चों को आप देख रहे हैं सभी उसी के हैं। जब ये मरते हैं तो यहीं पर उन्हें गाड़ दिया जाता है, आप जाकर देख लीजिए। बाहर इसके माता-पिता के स्मारक बने हैं।"

वे बताने लगे "जब मैं लगभग चार साल का था मेरी मां मर गई, मरी क्यों! चार साल का मैं रहा होऊंगा। कोई किताब हाथ में लेकर पढ़ रहा था अपने घर में और मेरी मां बहुत तन्मय होकर देख रही थी कि इतना छोटा-सा लड़का ये किताब पढ़ रहा है। उनको बहुत आश्चर्य हो रहा था। कहा कि "क्या आप पढ़ रहे हो?" "मैं काशी जाना चाहता हूं।" कहा कि "काशी! तब मैं यहां रहकर क्या करूंगी, जब तुम काशी जाना चाहते हो।" दूसरे दिन मेरी माता जी मर गईं, यहां आश्चर्यजनक जीवन मेरा शुरू हुआ। माता जी को लगा मानो यहां का आदमी नहीं बन पाएगा, बनारस चला जाएगा तो दूसरा हो जाएगा, जो भी लगा हो। पिता ने मेरा पालन-पोषण किया। एक दिन मुझे संस्कृत के शिक्षक ने काफी पीटा। मैं रोते-रोते घर आया और पिता जी को बताया। पिता जी ने दूसरी शादी से एकदम इंकार कर दिया। मैं चला गया बनारस पढ़ने के लिए तो पिता जी मुझसे कुछ विरक्त से रहने लगे। एक लड़का हुआ और वो भी अलग हो गया पढ़ने के लिए। बनारस जो

गया तो लोगों ने कहा जब बनारस आ गए हो तो मालवीय जी से मिल लो। मालवीय जी के यहां मैं गया, कुछ इस तरह से मुझसे व्यवहार करने लगे कि मैं आश्चर्यचकित। कहते हैं "तुम कहां से आए हो, तुम को अब यहीं रहना है, यहां से लौटकर मत जाना। बताइए मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, क्यों मैं यहां आया हूं मैं बनारस आ गया हूं।" मैंने कहा ठीक है "नहीं जाऊंगा। उनके शरण में आ गया हूं। जो कुछ पढ़ाई लिखाई मेरी हुई सब बनारस में।"

शास्त्री जी कहने लगे "मेरे सामने संस्कृत और हिंदी विषय था और हिंदी में हमारे आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास जैसे गुरु थे। संस्कृत में बनारस में तो बड़े-बड़े विद्वान थे ही। वही वातावरण मुझे बचपन में मिला जिनके दर्शन भी लोगों को नहीं होते। उनके साथ मुझे रहने, बोलने का मौका मिला, मज़ाक करने का मौका मिला। अठारह वर्ष की उम्र में मैं आचार्य हो गया था। अख़बार वालों ने आश्चर्य के रूप में यह ख़बर छापी।

"निराला जी उस ज़माने में लखनऊ में रहते थे। लखनऊ की किसी पत्रिका में यह ख़बर पढ़ी। उनको उत्सुकता हुई कि कैसे अठारह वर्ष की उम्र में आचार्य पास कर लिया। वे चले आए वहां से पता लगाते हुए बनारस। यहां आए तो नंददुलारे वाजपेयी द्वारा पता लगाया कि एक लड़का यहां रहता है, लंबे-लंबे बाल हैं। पहली बार निराला जी मेरे यहां आए, मेरे कमरे में पधारे। यह जानने के लिए कितनी उनको उत्सुकता हो गई। तब मेरा कर्त्तव्य हो गया कि जो आदमी मुझे किसी कारण वश मानता है...। मैंने अपना घर का नाम ही 'निराला-निकेतन' रखा दिया।"

बताने लगे "सन् 1937 की बात होगी। उस समय रायगढ़ (मध्यप्रदेश) के राजा चक्रधर सिंह थे। वे साहित्य प्रेमी थे। उन्हें एक राजकवि की आवश्यकता थी। 'छायावाद' नाम देने वाले आलोचक मुकुटधर पांडे राजकवि की खोज करने बनारस आए। उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो धारा-प्रवाह संस्कृत बोलता हो। किसी ने मेरे बारे में बताया। मुकुटधर पाण्डेय मुझसे मिले और उनके साथ मैं रायगढ़ गया। राजा का दरबार लगा हुआ था। मेरा परिचय पाते ही राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने एक शेर सुनाया—

"दिल के आइने में है तेरी तस्वीर/जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली।"

कहा कि "इसे आप संस्कृत में कैसे कहेंगे", मैंने सुनाया—

"प्रतिग्रीवा भंगमू नयन सुख संगम जनयति।"

राजा प्रसन्न हो गए, उन्होंने मुझे पुरस्कार स्वरूप सौ रुपये दिए तथा मैं राजकवि नियुक्त हो गया लेकिन मुझे वहां का वातावरण प्रतिकूल मालूम पड़ने लगा। मैंने राजा को कुछ कहे बिना रायगढ़ छोड़ दिया।"

"पटना जाता था। पटना के किनारे गंगा थी पर गंगा नहीं देखी थी। उस समय नाव का नामोनिशान नहीं था। वहां मैं चला गया गंगा देखने। मुझे आश्चर्य हुआ। लोगों से पूछा आगे क्या है तो लोगों ने मिथिला के बारे में बताया। पूछा हम आगे कैसे जाएंगे," तो कहा नदी से, नदी से हम कैसे जा सकते हैं क्योंकि जाना तो जान से खेलना है। नदी की नाव पर बैठकर वहां से हाजीपुर तक आना कितने आश्चर्य का विषय था, लेकिन ईश्वर क्या करना है। हमको प्रेरणा मिल गई, मैं बैठ गया। रास्ते में तो खूब रोता रहा लेकिन जब यहां आ गया तब लोगों ने मुज़फ़्फ़रपुर का नाम लिया। कहा "वहां बड़े-बड़े विद्वान हैं, आपकी इज्जत होगी, उसी प्रेरणा के रूप में मैं मुज़फ़्फ़रपुर चला आया। फिर किसी ने मुझे धर्म-समाज संस्कृत महाविद्यालय में ले जाकर ठहरा दिया।"

फिर रुककर आगे कहने लगे, "उन दिनों रामदयालु सिंह महाविद्यालय में साक्षात्कार चल रहा था। कोई वहां मुझे बुलाकर ले गया और मेरा चयन वहां हो गया। उस समय से लेकर अब तक मैं यहीं का होकर रह गया। मैं मुज़फ़्फ़रपुर बसने की नीयत से नहीं आया था, फिर भी यह अनजान अज्ञात प्रवास मेरा स्थायी निवास बन गया। इसे संयोग ही कहेंगे। इस शहर के किनारे एक नदी बहती है—गंडक और पेड़-पौधे भी खूब थे। पूरा इलाका बहुत हरा-भरा मालूम पड़ता था, ये दोनों चीज़ें मुझे अच्छी लगीं।

हम लोग तो मगही के रहने वाले, गया के रहने वाले। मुज़फ़्फ़रपुर में मैं ऐसे ही! गया का नाम तो सुना ही होगा, गया से बीस चालीस कोस और आगे बढ़ने पर एक गांव है मायाग्राम, जिसे लोग 'मैगस' बोलते हैं लेकिन मायाग्राम यह होगा क्योंकि गौतमबुद्ध की मूर्तियां बहुत ज्यादा हैं। गौतमबुद्ध का यह स्थान रहा है। उस भाग में अगर आप गए होंगे तो चारों ओर गौतमबुद्ध मिलेंगे आपको। वहां के रहने वाले हमलोग हैं। वहां से फिर सृष्टि बदल जाती है। वहां के रहने वाले हमलोग हैं लेकिन मेरा रहना वहां हुआ नहीं, मेरा जन्म मायाग्राम में हुआ और रहना मेरा बनारस में हुआ, अब मुज़फ़्फ़रपुर में रह रहा हूं। यही विचित्रता है।"

शास्त्रीजी आगे कहते कहते हैं—"जब मैं मुज़फ़्फ़रपुर में आया था तो मेरे बाल बहुत बड़े थे। बाल को देखकर लोग चकित रह जाते थे। जब मैं यहां ज़मीन लेने आया था, तो मैंने कहा घर बनाने के लिए मुझे ज़मीन चाहिए।

मेरा पांव दस-पंद्रह वर्ष पहले टूट गया। अपने ही घर के बछड़े ने तोड़ दिया। अब मैं चल-फिर नहीं सकता हूं। दिन भर यहीं बैठा रहता हूं। जब मैं एक दिन स्वस्थ जानकी वल्लभ शास्त्री था तो लोग मुझसे मिलने आते थे। अब मैं अस्वस्थ हूं तो कोई 'निराला-निकेतन' की ख़बर भी नहीं लेता है।

किसी ने पूछा कितना? मैंने कहा लगभग एक एकड़। वह मुझे आश्चर्य से देखता रह गया, कि एक एकड़ में घर बनाएगा। मैंने एक एकड़ ज़मीन लेकर घर बनाया।"

आगे बताने लगे, "एक बार पिताजी आए थे यहां, बहू ने उन्हें दूध दिया। पिताजी ने पूछा ये दूध कहां से आया है? तो बहू को बड़ा आश्चर्य हुआ। क्या पूछ रहे हैं, दूध कहां से आया है! बताया ये दूध बाजार से खरीद कर लाई है। उन्होंने कहा मैं बाज़ार का दूध नहीं पीता। सवेरा होते-होते गाय खरीद लाया। और पिताजी को उसी गाय का दूध दिया गया। उस पहली गाय का नाम कृष्णा रखा। ये जितनी भी गायें आप देख रहे हैं सब उन्हीं के बच्चे हैं। गायों का दूध नहीं बिकता और न ही गायों को बेचा जाता है। जब मर जाती हैं तो समाधि बनाई जाती है। यह मेरी पूजा है। इस रूप में मैंने जीवन बिताया। जाकर इनके समाधि स्थल को देख सकते हैं।"

शास्त्री जी थोड़ी देर के लिए मौन हो गए। फिर बताने लगे कि "मेरा पांव दस-पंद्रह वर्ष पहले टूट गया। अपने ही घर के बछड़े ने तोड़ दिया। अब मैं चल-फिर नहीं सकता हूं। दिन भर यहीं बैठा रहता हूं। जब मैं एक दिन स्वस्थ जानकी वल्लभ शास्त्री था तो लोग मुझसे मिलने आते थे। अब मैं अस्वस्थ हूं तो कोई 'निराला-निकेतन' की ख़बर भी नहीं लेता है। भावुक होकर कहने लगे—

"कभी आदमी समय को बांध लेता है तो कभी समय के हाथों आदमी भी बंध जाता है। आज मैं भी बंधा महसूस कर रहा हूं।"

फिर बताने लगे, "एक बार मेरी तबियत ख़राब हो गई थी तो मैंने अटल बिहारी बाजपेयी जी को पत्र लिखा। उन्होंने मुझे दिल्ली बुलाया और वहां मेरा अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में इलाज हुआ। अचानक मेरा

ध्यान शास्त्री जी के पांव पर गया। पांव में पट्टी बंधी थी। घाव अभी पूर्ण रूप से सूखा नहीं था। पलंग पर बैठा कुत्ता पट्टी को नोचने का प्रयत्न कर रहा था और शास्त्री जी उसे स्नेहिल स्पर्श दे रहे थे। उतनी देर में उनका सेवक आता है और कुत्ते को वहां से हटाने की कोशिश करता है। शास्त्री जी उसे डांट देते हैं, और खुद कुत्ते को नीचे उतार देते हैं।

वे फिर बताने लगे, "उन दिनों पृथ्वीराज कपूर मेरे घर आए थे। सिनेमा-जगत के इतने सुंदर लोग मेरे घर आए और दो दिन ठहरे थे। वो भी एक दिन था। वे चाहते थे कि मेरी किताब 'पाषाणी' पर फिल्म बने, लेकिन उनके जीवन-काल में यह संभव नहीं हो सका, इसलिए मैंने अपनी किताब 'पाषाणी' पृथ्वीराज कपूर को ही समर्पित की। आज भी उनके पुत्रों के साथ मेरा अत्यंत निकट संपर्क है। देखिए पृथ्वीराज कपूर की तस्वीर लगी हुई है और बगल में छायावाद के चारों कवि की तस्वीर है। उनकी बगल में मेरे मुज़फ़्फ़रपुर आने और अवकाश प्राप्त करने के समय की तस्वीर लगी हुई है।

उस समय मुझे प्रसाद पंत एवं निराला का कृपापात्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, प्रसाद जी से मिलने का सौभाग्य निराला जी के माध्यम से हुआ। 'कामायनी' के प्रकाशन से पूर्व कितने ही सर्ग मुझे प्रसाद जी के मुख से सुनने का अवसर मिला। एक बार मुजफ़्फ़रपुर की स्थानीय संस्था 'सुहृद संघ' के वार्षिकोत्सव में निराला आए थे। उस वक्त वे मेरे निवास स्थान पर ही ठहरे थे। वे हमारे परिवार के सदस्यों का हमेशा कुशलक्षेम जानने को उत्सुक रहते थे। निराला ने मुझे सैकड़ों पत्र लिखे जिनका संकलन 'निराला के पत्र' नाम से हो चुका है। संगीत में उन दिनों मेरी ख़ास रुचि थी। लोग आग्रह करते गाने को तो मैं टाल नहीं पाता। मेरे स्वर को सुनकर हरिवंशराय बच्चन ने कहा– "तुम्हारा गला काट लेने लायक है।"

अब मेरे मन में भी जिज्ञासा हुई उनके मुख से कोई गीत सुनने की। मेरे मन में बार-बार सवाल उठ रहा था कि उन्हें गाने को कहूं या नहीं। अंततः मैं शास्त्री जी से आग्रह कर ही बैठा कि मुझे आप से कोई गीत सुनना है। शास्त्रीजी ज़ोर से हंस पड़े। आप मुझसे गीत सुनेंगे? हां...पूरा गीत तो स्मरण नहीं पर कुछ पंक्ति सुनाता हूं जो केदार राग में है। मैंने हामी भर दी, वे सुनाने लगे–

"किसने बांसुरी बजाई?/जनम-जनम की पहचानी
वह तान कहां से आई?/ अंग-अंग फूले कदंब-सम
सांस-झकोरे झूले/सूनी आखों में यमुना की
लोल लहर बहराई/किसने बांसूरी बजाई..."

मुझे उनसे एक और गीत सुनने की इच्छा हुई। उन्होंने मेरे मौन-आग्रह को भांप लिया और स्मित मुस्कान देते हुए गाया–

"जिन्होंने हो तुझे देखा, नयन वे और होते हैं!
जो बनते वंदना के छंद, क्षण वे और होते हैं..."

मैं उनके गीत को सुनकर भाव-विह्वल हो गया। सोचने लगा नब्बे साल के वृद्ध के स्वर में अभी भी कितनी मिठास है। गीत गाते हुए लग रहा था उनका यौवन लौट आया है। वे सिर हिला-हिला कर संगीत में डूब कर गा रहे थे। आगे बताने लगे "सामने जो आप मंदिर देख रहे हैं। वह मेरे पिताजी का है। मैं रोज़ पिताजी की पूजा करता हूं। वही मेरे लिए भगवान हैं। आपने नहीं सुना होगा कि किसी ने अपने पिता का मंदिर बनाया होगा।"

शास्त्री जी के जीवन-दर्शन से मैं अभिभूत हो गया। लगभग चार घंटे तक शास्त्रीजी के साथ बातचीत करता रहा और पता भी नहीं चला समय कैसे बीत गया। अब मैं उनसे विदा लेने को तत्पर होता हूं। इतने महान् विभूति को छोड़कर जाने को मन नहीं होता। मैंने उनका चरण स्पर्श किया और बाहर निकल गया। वे मुझे फिर आते रहने के लिए कहते हुए मेरी पीठ थपथपाते हैं। मैं बाहर निकल जाता हूं। गाय, कुत्ते की समाधि स्थल को देखते हुए आश्चर्यचकित हो जाता हूं। सभी स्मारकों पर साहित्यिक नामों का उभार दिखता है। किसी स्मारक पर अपर्णा, कृष्णा तो किसी पर शेफ़ाली, जयंती, कस्तूरी, रुपाली आदि लिखा है। फिर शास्त्री जी को नमन कर बाहर निकल जाता हूं। उनसे विदा लेते ही मन उदास हो जाता है उसी उदासी के पल में उन्हीं की पंक्ति स्मरण हो आता है–

"फूले चमन से रूठकर
बैठी विजन में, ठूंठ पर
है एक बुलबुल गा रही!
कैसी उदासी छा रही!" ❑

संपर्क : एफ/231 साउथ मोतीबाग, नानकपुरा, नई दिल्ली-110021

कविता : **आलोक देशवाल**

तुम्हारा साथ ...

तुम्हारा साथ
एक उम्मीद, एक एहसास
तुम्हारा साथ
मां के सामने एक बच्चे की खिलखिलाहट
तुम्हारा साथ
पत्तों से फिसलती ओस की एक बूंद
तुम्हारा साथ
सर्दियों में आंगन के किसी कोने में सिमटा धूप का एक टुकड़ा
तुम्हारा साथ
दूर पहाड़ी के मंदिर से आती घंटी की आवाज़
तुम्हारा साथ
बारिश के बाद मिट्टी की सोंधी खुश्बू
तुम्हारा साथ
स्वप्निली आंखों में हज़ारों सपने
तुम्हारा साथ
बादलों के साथ आंखमिचौली करता चांद
तुम्हारा साथ
ऊपर फैले आसमान का विस्तार
तुम्हारा साथ
आस्था में भीगे चंद अकेले लम्हे
तुम्हारा साथ
मेरे लिए सिर्फ़ मेरे लिए तुम्हारी कोई
'वो' वाली बात...

संपर्क : 2 यू एफ, बाबर प्लेस, बंगाली मार्केट, नई दिल्ली-110001

तीन नवगीत : **श्यामसुंदर दुबे**



प्रेम-राग

छोड़ पत्ते
जो खड़ा अवधूत-सा था
उसी तरु की पोर पीके फूटते
हुए प्रमुदित प्राण!
राग वासंती, विहंग कुल
गा रहा
छेड़ती पिक आज पंचम तान!

समूचा जंगल अचानक
दिख रहा रंगों नहाया;
मधु गंध का ऐसा नशा
लगे अपना-सा पराया!

कपोलों रख गया
कोई गुलाबी पांखुरी
अधर पर खिलती शरारत से
भरी मुस्कान!

मोरपंखी दृष्टि के अभिसार
बजती बांसुरी-सी देह;
झोंका एक आया नेह का
खिली उजली धूप अंगना-गेह!

आम्रबौरों से महकती
खिड़कियों में झांकते चेहरे
दूर तक देखें उन्हें—
जिन पर छिड़कते जान!

वसंत एक जुलाहा है

गंगा किनारे
बाबा चिलम फूंकता है;
चिलम से निकलती है
लाल-नीली लपट
वैरागियों के अखाड़ों में—
इस तरह वसंत फूटता है!

प्रेम का एक राग
जंगलों में गूंजता है
जैसे भगौरिया मेले में मिलाता,
जोड़ीदार के पान में
डलवाता है सुर्ती-मसाला!

साफों की कलगी के रंगों में
उतरता झाबुआ का पलास-वन
पता नहीं वसंत कहां से लाता
इतना पक्का रंग जो
मुश्किल से छूटता है!

फगुवारों की ढोलकी पर
रात के सन्नाटे को तोड़ती
पड़ती है राई की थाप;
बेड़िनी के पांव नहीं रुकते
सुबह तक जागता रहता है
फागुन का आलाप!

गंधों के तागों से
ताना-बाना बुनना
एक जुलाहा है वसंत
एक भी धागा उसकी बुनावट का
कभी नहीं टूटता है!

महुआ महके

अंगड़ाई आई वसंत को
वन का जागा
कोना-कोना!

प्राणों का आसव
पीकर के
खिले कुसुम-दल;
तरु-किसलय की
रक्त हथेली
आभा झलमल!

चितकबरी
छाया पलास की
सुस्ताता कोई मृग-छौना!

लाल गुलाल
फाग ने मल दी
हंसी हल्दिया रातें,
लिपटी दखिनैया
डाली से
करती बहकी बातें!

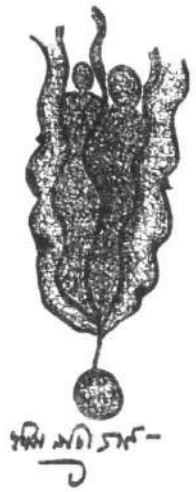
सुबह-शाम
किरणें बिखेरतीं
नदिया ऊपर सोना!

महुआ महके
दहके सेमल
पांखी चहके अमराई,
सूरज का रथ भी
अब चलता
दिन में कोस अढ़ाई!

गोरी फ़सलें
खेत सांवले
गांव का रूप सलौना!

संपर्क : श्रीचंडी जी वार्ड, हटा, दमोह-470775 (म.प्र.)

मौसम गीत : **अरविंद कुमार 'साहू'**



पधारी सर्दी दुबके पांव

पधारी सर्दी दुबके पांव
सर्द हवा से पसरी ठंडक,
आंगन में सिहरी पद चापें
ठंडा-ठंडा बाहर-भीतर,
तन की गर्मी उगले सांसें
कुहरे जैसा धुआं-धुआं है,
मन का भीगा ठांव
पधारी सर्दी दुबके पांव
सन्नाटे में डाली-डाली,
पत्ती-पत्ती सिमटी ठहरी ,
कोंपल दुबकी भीतर बैठी,
ओस बूंद में डूबी गहरी,
कलियां घूंघट काढ़ निहारें ,
ऊषा का घर गांव
पधारी सर्दी दुबके पांव
निहारे घायल धूप निरीह ,
करे पाला सब जग से रार,
किसी बिरहिन-सी कुढ़ती रात ,
घटाती दिन का कारोबार
बुने गोरी फागुन के गीत ,
शीत होती पाहुन की छांव
पधारी सर्दी दुबके पांव।

संपर्क : साहू सदन, अकोढ़िया रोड, ऊंचाहार, रायबरेली-229404 (उ.प्र.)

दो कविताएं : **सुमन लता**

वसंत मनाने का मन है!

प्रिय!
आज समझ लो
बौरों की, नूतन मंजरियों की भाषा
बस अभी, अभी वसंत ने आ
वातायन खोला है।
बस अभी, अभी कोहरे की पर्त हटी
छू गई गुनगुनी धूप सुखद कितनी!
बूढ़े पत्तों के झरते ही, नूतन किसलय टहनी पर इतराए।
लीची के तरू ने ओढ़ गुलाबी-सी चूनर
कितने भंवरों के मन फिर बहकाए।
बस अभी, अभी तो कोयल की बोली
अमराई में गूंजी, मुखर हुई,
धूमिल कोहरे के हटते ही,
मोहक उजास ने घेर लिया
मन का आंगन।
प्रिय मत रोको स्निग्ध प्यार से आज मुझे
चहुं दिश ही राग रंग का मौसम है
भर दो मन को गर्माहट से,
प्रिय आज वसंत मनाने का मन है!

प्यार

जब प्यार किसी का मिलता जीवन में,
मीठी उजास से भर जाता मन का आंगन।
कांटे प्रसून हो उठते
जंगल मधुबन हो जाता
वन के पंछी साथी होते, निर्झर का जल अमृत लगता
जब कोई पास सहज मन से होता
पल क्षण कितने कोमल हो जाते हैं
वह कोमल छुअन ज़िंदगी की
सांसों में मिलती जब,
जीवन कितने सुंदर हो जाते हैं!
पतझड़ में लगता ऋतु वसंत की हो जैसे,
ऐसा हरियाली-सा मन जग जाता
सब कुछ कितना मोहक हो उठता है
जब प्यार किसी का मिलता जीवन में
निर्मल उजास से भर जाता मन का आंगन।

संपर्क : 01-बिर्च कोर्ट, निर्वाण कंट्री, साउथ सिटी-2, गुड़गांव-122018 (हरियाणा)

दो कविताएं : **अशोक विश्वकर्मा**

वसंत पर्व

एक

वसंत फूल-पत्तों और हवाओं का पर्व नहीं
फिर भी हम अपने रंगों में रचते हैं
वही सब कुछ
जो फूल, पत्तों और हवाओं से बनता है
फूल, पत्तों और हवाओं से बना हुआ-सब कुछ
वसंत के हिस्से में चला जाता है
और हम अकेले गुनगुनाते हैं
एक पूरे पर्व को
पर्व के लिए बनी हमारी गुनगुनाहट
आहिस्ते-आहिस्ते तितलियां चुराती हैं
और फूल, हमारे नाम से कुछ भी कह जाते हैं

दो

जंगलों के सौदागर
वसंत के नाम की/ खुशनुमा महफ़िल लगाएंगे
और ज़ोर-ज़ोर से नीलामी की आवाज़ में
अंगड़ाई लेते पेड़ों को
पुड़ी भर रकम के लिए
कुचल-कुचल कर मारेंगे
और सारी दुनिया में हाहाकार होगा
वसंत की हवाओं के लिए

तीन

कोयल को नहीं मालूम
उसकी कुहुक में
वसंत का मरा हुआ वंश होगा
चिड़िया, केवल इसलिए चहचहाएगी
कि उसके घोंसले में, आख़िरी वसंत का बेटा होगा

चार

हम अपने घर के आंगन में
वसंत के किसी टुकड़े को फुदकते हुए देखकर
कंप्यूटर जैसे आंकड़े लगाएंगे
कि कितने और वसंत
किन-किन खिड़कियों में फंसे हैं!

चैत तुम्हारी सुगंधा का महीना है

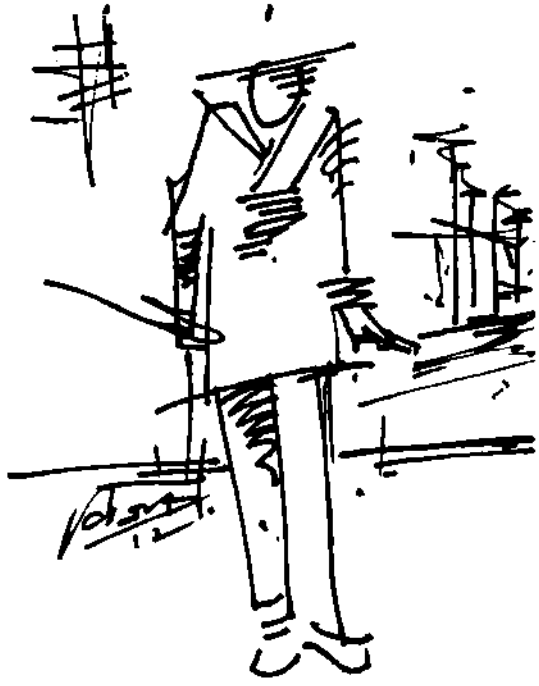
टेसुओं की कतरों में छुपकर
चैत जिस धूप की उंगली पकड़कर आता है मेरे आंगन में
मैं उसी धूप से मांगता हूं/ आम की मौर की महक से भरे
तुम्हारे होठों के रसदार किस्से / तुम्हारे होठों के रसदार किस्से
टेसुओं के होते हैं, चैत के होते हैं/ और उस धूप के होते हैं
जो मुझे देखकर / तुम्हारी हथेलियों में पसर जाती धूप के संग
मेरी गंध के वे पौधे भी होते हैं
जो आम के मौर से बनते हैं, तुम्हारे ख़ामोश शब्दों से बनते हैं
तुम्हारे ख़ामोश शब्दों के जंगलों से होकर ही चैत मेरे आंगन में आता है
और वही हंसी बिखेर जाता है
जो टेसुओं की एक-एक पंखुरिया की खनक से बनती है
टेसुओं की एक-एक पखुरियों की हर खुशी में/ मुझे बुलाया जाता है
हंसी में आकर भी मैं नहीं समझ पाता
आम की मौर की महक से भरे
तुम्हारे होठों के रसदार किस्से में
आम के मौर की ही महक क्यों है?
इसे कोयल से पूछकर
तुम्हें बताऊंगा/ कोयल कुहुकती है
इन्हीं चैत के दिनों में आम की डाली पर
मैं कोयल की कुहुक में
तुम्हारे होठों की गूंज भी सुनता हूं
तुम्हें कोयल मानकर ही मैं, इस चैत के मौसम में / तुम्हें पुकारता हूं
मेरी पुकार सुनकर आम की मौरों में फूल आ जाते हैं
तुम्हारे होठों पर शब्द आ जाते हैं
तुम्हारे शब्द से बना हुआ
ये चैत का महीना
अब इतिहास होना चाहता है
मैं भी इतिहास से लिखा एक दिन हूं
मेरे बराबर का कोई एक पलाश का वृक्ष
अब भी तुम्हारी मुट्ठियों में बंद है
इसीलिए तुम्हारी मुट्ठियों से खुशबू आती है
पलाश के वृक्ष की, मेरे मन की, और उस चैत की
जिसे मैं इतिहास मानता हूं
और तुम अपनी परछाई का एक हिस्सा
तुम्हारी परछाई से सबको सुगंध देता है ये चैत का महीना
मुझे भी सुगंध आती है
इस चैत के महीने से
इसीलिए कोयल को भी मालूम है
चैत तुम्हारी सुगंध का महीना है!

संपर्क : पृठायन, आधारताल, जबलपुर-482004 (म.प्र.)

कहानी

दलदल

सुशांत सुप्रिय



"मैं उस समय बारह साल का था। वह दस साल का रहा होगा। वह मेरा सबसे अच्छा मित्र सुब्रोतो।" बूढ़े की भारी आवाज़ कमरे में गूंज उठी। वह हमें अपने जीवन की सत्य-कथा सुना रहा था।

कुछ पल रुककर बूढ़े ने फिर कहना शुरू किया, "मेरा जन्म सुंदरवन इलाक़े के पास एक गांव में हुआ। गांव से दो मील दूर दक्षिण में दलदल का इलाका था। पिता मछुआरे थे जो गांव के उत्तर में बहती नदी से मछलियां पकड़ने का काम करते थे। पिता बताते थे कि पच्चीस-तीस मील दूर जाकर यह नदी एक बड़ी नदी में मिल जाती थी। गांव के पूरब और पश्चिम की ओर घने जंगल थे।

मेरा मित्र सुब्रोतो बचपन में ही अपाहिज हो गया था। पोलियो की वजह से उसकी एक टांग हमेशा के लिए बेकार हो गई थी। पर मेरी सभी शरारतों और खेलों में वह मेरा भरपूर साथ निभाने की कोशिश करता था। सुब्रोतो की आवाज़ बहुत सुरीली थी। वह बहुत मीठे स्वर में गीत गाता था। उसके गाए गीत सुनकर मैं मस्त हो जाता था।

हमें गांव के दक्षिण में स्थित दलदली इलाक़े की ओर जाने की सख़्त मनाही थी। उस दलदल के भुतहा होने के बारे में अनेक तरह की कहानियां प्रचलित थीं। हम बच्चे अक्सर गांव के उत्तर में बहती नदी के किनारे जाकर खेलते थे। मैं नदी में किनारे के पास ही तैरता रहता जबकि सुब्रोतो किनारे पर बैठा नदी के पानी में एक कोण से चपटे पत्थर फेंककर उन्हें पानी की सतह पर फिसलता हुआ देखता।

अपने हम-उम्र बच्चों के बीच मैं बड़ा बहादुर माना जाता था। दरअसल मैंने एक बार गांव में घुस आए एक लकड़बग्घे पर पत्थर फेंक-फेंककर उसे गांव से बाहर भगा दिया था। एक बार नदी किनारे खेलते-खेलते गांव के कुछ बच्चों ने मुझे चुनौती दी कि क्या मैं गांव के दक्षिण के दलदली इलाक़े में अकेला जा सकता था? बात जब इज़्ज़त पर बन आई तो मैंने चुनौती मान ली। हालांकि सुब्रोतो ने मुझे ऐसा करने से मना किया पर तब तक मैंने हामी भर ली थी। यह तय हुआ कि कल मैं गांव के दक्षिण में स्थित दलदली इलाक़े में जाऊंगा और सकुशल लौटकर दिखाऊंगा।

नियत सुबह गांव के सभी बच्चों की टोली गांव के दक्षिणी छोर पर पहुंची। मैं और सुब्रोतो भी उन सबके साथ थे। मुझे दो मील दूर के दलदली इलाक़े में जाकर कुछ समय वहां बिताना था और फिर सकुशल वापस लौटकर दिखाना था। सबूत के लिए मुझे दलदल की कुछ गीली मिट्टी साथ ले जाए जा रहे थैले में भरकर वापस लानी थी। बाक़ी बच्चे वहीं मेरा इंतज़ार करने वाले थे। उस दलदली इलाक़े में जाने से सभी डरते थे।

लेकिन ऐन मौक़े पर मुझे भी उस दलदली इलाक़े में अकेले जाने में डर लगने लगा। मैंने बाक़ी बच्चों से इजाज़त मांगी कि मेरा प्रिय मित्र सुब्रोतो भी मेरे साथ जाएगा। बाक़ी बच्चे बड़ी मुश्किल से माने पर सुब्रोतो ने दलदली इलाक़े में जाने से साफ़ इंकार कर दिया। जब मैंने उसे हमारी मित्रता का वास्ता देकर भावुक किया तब जाकर वह मेरे साथ चलने के लिए तैयार हुआ।

आख़िर उस सूर्य-जले दिन हमने अपना सफ़र शुरू किया। दो-ढाई मील चलकर अंत में हम दोनों उस इलाक़े में पहुंच गए। सामने खदकता हुआ दलदल था जिसमें डरावने बुलबुले फूट रहे थे और अजीब-सी भाप उठ रही थी। दलदल के किनारे से कुछ दूर पहुंचकर हम दोनों बैठ गए। सुब्रोतो लंगड़ा कर चलने की वजह से बेहद थक गया था और हांफ रहा था लेकिन असली काम तो अभी बाक़ी था। सबूत के तौर पर हमें दलदल की थोड़ी गीली मिट्टी साथ लाए थैले में भर कर वापस ले जानी थी।

सुब्रोतो को वहीं छोड़कर मैं दलदल की ओर आगे बढ़ा। ज़मीन घास, मरे हुए पत्तों और फिसलन भरी काई से ढंकी हुई थी। ठीक से कुछ पता नहीं चल रहा था कि कहां ठोस ज़मीन ख़त्म हो गई थी और गहरा दलदल शुरू हो गया था।

अगला क़दम ज़मीन पर रखते ही मैंने पैर को धंसता हुआ महसूस किया। इससे पहले कि मैं संभल पाता, मेरा दूसरा पैर भी दलदल में धंसने लगा था।

मैं सुब्रोतो का नाम लेकर ज़ोर से चिल्लाया। लेकिन जब तक सुब्रोतो लंगड़ाते हुए मेरे पास पहुंचता, मैं कमर तक दलदल में धंस गया था। जैसे नदी में डूबता हुआ आदमी तिनके को भी सहारा समझकर बचने के लिए व्याकुल होकर छटपटाता है, उसी तरह मैंने भी सुब्रोतो के अपनी ओर बढ़े हुए हाथ को कसकर अपने हाथों में पकड़ लिया और व्याकुल होकर छटपटाते हुए ख़ुद को किसी तरह दलदल से बाहर निकालना चाहा लेकिन जब मैंने उसके हाथ के सहारे दलदल से बाहर निकलने की कोशिश की तो इस खींचतान में सुब्रोतो के पैर की किनारे पर से पकड़ ढीली हो गई और वह भी मेरे साथ ही उस दलदल में आ गिरा। देखते-ही-देखते वह भी दलदल में कमर तक धंस गया। दलदल हर पल हम दोनों पर अपना शिकंजा कसते हुए हमें नीचे खींचता जा रहा था।

घबराकर मैंने इधर-उधर देखा। किनारे पर उगे एक बरगद के पेड़ की शाखाएं दलदल के ऊपर फैली थीं। वहां से कुछ लंबी जटाएं नीचे दलदल की ओर आ रही थीं।

मैं पूरा ज़ोर लगाकर ऊपर की ओर उचका और मैंने अपने दोनों हाथ उन जटाओं की ओर फैलाए। पता नहीं यह मेरे उचकने का असर था या जटाओं को ही मुझ पर दया आ गई थी, नीचे दलदल की ओर लटकी एक मज़बूत जटा मेरी हथेलियों की गिरफ़्त में आ गई। उस जटा की पकड़ के सहारे मैं किसी तरह धीरे-धीरे ख़ुद को

दलदल से बाहर खींचने में कामयाब हो गया। मैं वैसे भी शरीर से हृष्ट-पुष्ट था। जटा को पकड़ कर मैं ऊपर बरगद की शाखा पर चढ़ गया। तब तक सुब्रोतो छाती तक दलदल में धंस चुका था।

मुझे पता था, यदि मैंने सुब्रोतो को बचाने के लिए जल्दी ही कुछ नहीं किया तो दलदल उसे सावुत निगल जाएगा लेकिन मेरे हाथ-पैर ठीक विपरीत दिशा में काम कर रहे थे। डर ने मुझे जकड़ रखा था। मेरी देह जल्दी-से-जल्दी उस दलदल की पहुंच से दूर भाग जाना चाहती थी।

मुझे खुद भी नहीं याद, किस तरह मैं पेड़ से उतर कर किनारे पर पहुंचा। जब मुझे होश आया , तब तक सुब्रोतो गले तक दलदल के भीतर जा चुका था लेकिन उसके हाथ अब भी बाहर थे। मैंने भाग कर पेड़ से लटकती एक लंबी जड़ तोड़कर उसकी ओर फेंकी। पर शायद तब तक बहुत देर हो चुकी थी। हालांकि सुब्रोतो ने जटा अपने हाथों में पकड़ी और मैंने उसे बाहर खींचने की कोशिश भी की किंतु वह जटा सुब्रोतो के अशक्त हाथों से बार-बार छूट जाती थी। संभवतः वह उस दलदल में बहुत गहराई तक धंस चुका था। शायद उसकी देह में अब अधिक ऊर्जा नहीं बची थी या फिर कोई अथाह शक्ति हमारी तमाम कोशिशों के बावजूद उसे धीरे-धीरे नीचे खींचती चली जा रही थी।

देखते-ही-देखते सुब्रोतो दलदल में ग़ायब होने लगा। मेरी आंखों के सामने ही उस राक्षसी दलदल ने उसे ज़िंदा निगल लिया। नीचे जाते समय उसके चेहरे पर एक अजीब कातर भाव था, जैसा भाव मारने के लिए ले जाए जा रहे बकरे के चेहरे पर होता है। एक अजीब-सी आवाज़ हुई और सुब्रोतो का सिर दलदल के भीतर ग़ायब हो गया। दलदल की सतह पर पहले जहां सुब्रोतो था, वहां कुछ पल बड़े-बड़े बुलबुले फूटते रहे।

फिर एक ऐसी मनहूस सघन चुप्पी वहां छा गई जैसे सारे विश्व की आवाज़ें किसी दानवी शक्ति ने सोख ली हों।

मैं सन्न रह गया। सब मेरी ही ग़लती थी। सुब्रोतो तो इस दलदली इलाके में आना ही नहीं चाहता था। मैं ही उसे मौत के मुंह में घसीट लाया। मैं अपनी जगह पर जड़ हो गया था।

सुब्रोतो को दलदल में ग़ायब हुए एक-दो मिनट बीत चुके थे। तभी एक अजीब-सी भयावह आवाज़ हुई—जैसे गले में कुछ फंस जाने पर कोई चिल्लाने की मर्मांतक कोशिश कर रहा हो।

अब मैं आपको जो बताऊंगा, उस पर आप यक़ीन नहीं करेंगे। मुझे मालूम है, आपको यह असंभव लगेगा। आप कहेंगे—वह मेरा भ्रम था। वहम था। पर नहीं। मैं अपने पूरे होशो-हवास में था। यही सच है।

दलदल में पूरा धंस कर ग़ायब हो जाने के लगभग दो मिनट बाद एक अजीब-सी भयावह आवाज़ के साथ अचानक सुब्रोतो का कीचड़ से सना सिर और दोनों हाथ दलदली मिट्टी से ऊपर निकल आए! जी हां, मेरा सबसे अच्छा मित्र सुब्रोतो, जिसे कुछ देर पहले दलदल पूरा का

देखते-ही-देखते सुब्रोतो दलदल में ग़ायब होने लगा। मेरी आंखों के सामने ही उस राक्षसी दलदल ने उसे ज़िंदा निगल लिया। नीचे जाते समय उसके चेहरे पर एक अजीब कातर भाव था, जैसा भाव मारने के लिए ले जाए जा रहे बकरे के चेहरे पर होता है। एक अजीब-सी आवाज़ हुई और सुब्रोतो का सिर दलदल के भीतर ग़ायब हो गया। दलदल की सतह पर पहले जहां सुब्रोतो था, वहां कुछ पल बड़े-बड़े बुलबुले फूटते रहे। फिर एक ऐसी मनहूस सघन चुप्पी वहां छा गई जैसे सारे विश्व की आवाज़ें किसी दानवी शक्ति ने सोख ली हों।

पूरा लील गया था, उसने एक झटके से अपना कीचड़-सना सिर और अपने दोनों हाथ दोबारा दलदल से बाहर निकाल लिए थे। क्या उसने अपनी समस्त संचित ऊर्जा केंद्रित करके जीवित बचे रहने का एक अंतिम महा-प्रयास किया था? क्या वह मौत के पंजों में छटपटा रहे जीवन की एक अंतिम फड़फड़ाहट थी? या वह कुछ और ही था जो मेरी समझ और कल्पना, दोनों से परे था? ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूं क्योंकि सुब्रोतो का चेहरा उसका अपना चिर-परिचित चेहरा नहीं लग रहा था। यह मेरा वह मित्र नहीं लग रहा था जिसे मैं बरसों से जानता था।

दरअसल सुब्रोतो के कीचड़-सने चेहरे पर एक विकृत मुस्कान फैली थी जिसके भीतर से उसकी दो खुली आंखें किसी अतिरिक्त ऊर्जा से चमक रही थीं। दहकते अंगारों-सी लाल आंखें! मेरी दिशा में फैले उसके दोनों हाथ मदद मांगते-से नहीं लग रहे थे बल्कि मुझे पकड़ कर उस भुतहे दलदल में खींच लेने को आतुर-से लग रहे थे। बल्कि यदि मैं पास होता तो वे हाथ मुझे निश्चित-ही दबोच लेते।

मैं बेहद डर गया और थर-थर कांपने लगा। हालांकि मेरा ज़हन मुझे कह रहा था कि मैं फिर से पेड़ से तोड़ी गई लंबी जड़ उसकी ओर फेंक कर उसे बचाने का प्रयास करूं, किंतु मेरी पूरी देह इस सोच के विरुद्ध एकजुट हो गई थी। बदहवास-सा मैं पलटा और वहां से सरपट भागा। बहुत दूर जाकर ही मैंने हांफते हुए मुड़कर देखा। सुब्रोतो का सिर अब दोबारा दलदल में नीचे धंसने लगा था किंतु उसके दोनों हाथ अब भी मुझे अपनी ओर बुलाते प्रतीत हो रहे थे ...

जब मेरी आंख खुली तो मैं गांव में अपने घर के बिस्तर पर पड़ा था। मेरी मां मेरे सिरहाने बैठी थी। पिता बगल में खड़े थे। मैं उन्हें सुब्रोतो के साथ हुई दुर्घटना के बारे में बताकर रोने लगा। यह सुनकर मां ने मुझे सीने से लगा लिया। तब पिता ने बताया कि जब मैं कई घंटों तक नहीं लौटा तो गांव के बच्चे बड़ों को लेकर दलदली इलाके की ओर गए। मैं उन्हें दलदल से कुछ दूर ज़मीन पर बेहोश पड़ा मिला था। तेज़ बुख़ार में तपता हुआ। वे सब मुझे उठा कर गांव ले आए। पिता ने बताया कि मैं तीन दिनों तक नीम-बेहोशी की हालत में बिस्तर पर पड़ा सुब्रोतो का नाम बड़बड़ाता रहा था। गांव का ओझा आकर अपना यत्न कर गया था। उसका कहना था कि उस भुतहा दलदल वाले इलाके में जाने की वजह से मेरे अंदर किसी प्रेत का वास हो गया था। लेकिन अंत में पड़ोसी गांव के वैद जी के देसी उपचार से ही तीन दिन के बाद आज मुझे होश आया था।

उस त्रासद घटना के बाद मेरा जीवन पहले जैसा नहीं हो पाया। सुब्रोतो के पिता इस सदमे से पागल-से हो गए। वे मुझे अक्सर गांव के दक्षिणी दलदली इलाके की ओर बौराए-से भटकते दिखते। मैं इस दुर्घटना के लिए खुद को कभी माफ़ नहीं कर पाया। मुझे लगता, मैं सुब्रोतो को बचा सकता था लेकिन मैं कायर निकला। भयभीत मैं उसे दलदल में धंसता हुआ छोड़कर भाग आया। उसकी वह अंतिम छवि मेरे स्मृति-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गई थी : दलदली कीचड़ से सना उसका चेहरा ... उसकी विकृत मुस्कान ... अंगारों-सी दहकती उसकी आंखें ... मेरी ओर फैले उसके दोनों हाथ ...। चाहकर भी मैं उस मारक छवि से मुक्ति नहीं पा सका।

अक्सर सुब्रोतो मेरे दुःस्वप्नों में आता। मेरी ओर फैले उसके दोनों हाथ मुझे दबोच लेते और अपने साथ उस भुतहा दलदल में खींच ले जाते। सर्दियों की रात में डर की कंपकंपी के कारण मेरी नींद खुल जाती और मैं खुद को पसीने से तरबतर पाता। वह भावनात्मक सदमा मुझे चैन से जीने नहीं दे रहा था। जब मैं आईने में देखता तो मेरी छवि अपना मुंह मोड़ लेना चाहती। मेरा जीवन जैसे उस दलदल का बंधक बनकर रह गया था।

मैं अपने दुःस्वप्नों के भीतर फंसा छटपटाता रहता।

मेरी ऐसी हालत देखकर पिता ने मुझे पढ़ने के लिए एक रिश्तेदार के पास कलकत्ता भेज दिया। पढ़ाई के बाद मेरी नौकरी दिल्ली में लग गई। मैं फिर कभी गांव नहीं गया। दरअसल मैंने अपना गांव हमेशा के लिए छोड़ दिया था। मुझे दुःस्वप्न आने कम हो गए लेकिन पूरी तरह बंद नहीं हुए। मैं गांव से दूर चला आया था लेकिन गांव की स्मृतियां मुझसे पूरी तरह दूर नहीं हो सकी थीं।

मैंने शहर की एक लड़की से शादी कर ली। फिर मेरे घर बेटे ने जन्म लिया। समय बीतता गया। कई बरस बाद मां-बाबूजी भी चल बसे। पर मैं वापस गांव नहीं गया। उन्हीं दिनों मैंने वह कविता लिखी थी—नृप डरते हो/ एड्स से/ कैंसर से/ मृत्यु से/ मैं डरता हूं/ उन पलों से/ जब जीवित होते हुए भी/ मेरे भीतर कहीं/ कुछ मर जाता है ...।

धीरे-धीरे मेरा बेटा दस साल का हो गया। वह भी बहुत सुरीली आवाज़ में गाना गाता था। उसके गाए गीत सुन कर मुझे सुब्रोतो की बहुत याद आती। कभी-कभी मुझे लगता जैसे सुब्रोतो ने ही मेरे घर में बेटे के रूप में जन्म ले लिया है। पता नहीं आप इसके बारे में क्या कहेंगे लेकिन धीरे-धीरे मेरे दिल को यह धारणा मज़बूत होती जा रही थी।

अंत में मैंने फ़ैसला किया कि मैं वापस गांव जाऊंगा। अब मैं चालीस साल का हो गया था। आख़िर कब तक मैं उस त्रासद घटना का बोझ सलीब-सा अपने कंधों पर ढोता रहता?

गर्मी की छुट्टियों में मैं तीस बरसों का लंबा अंतराल पार करके गांव चला आया। मेरी पत्नी और बेटा भी मेरे साथ थे। दूर से देखा मैंने गांव के अपने घर को, गोया अंतरिक्ष से देखा मैंने धरती उर्वर को। मन में एक धुकधुकी भी थी कि मेरी अधेड़ आंखें मेरे बचपन के दृश्यों का सामना अब न जाने कैसे कर पाएंगी। मेरे ज़हन में बचपन के मधुर दिनों की स्मृतियां लौटने लगीं लेकिन गांव अब पहचाना भी नहीं जा रहा था। वह जैसे एक बाज़ार में तब्दील हो चुका था। अब घरों में घुस आया था बाज़ार। बाज़ार में खो गए थे घर। अब पक्की गलियों वाले कस्बेनुमा स्वरूप में बदल चुके मेरे गांव में जगह-जगह पेय-जल बेचने वाली दुकानें खुल गई थीं। दुकानों में विभिन्न कंपनियों के कनेक्शन के सिम-कार्ड बिकने लगे थे। गांव में डिश टी. वी. और केबल कनेक्शन पहुंच चुका था। सुनने में आया कि 'वालमार्ट' भी उस इलाक़े में अपना आउटलेट खोलने वाला था। कई और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आउटलेट तो गांव में पहले ही खुल चुके थे। गांव अब बाज़ार की गिरफ़्त में

गर्मी की छुट्टियों में मैं तीस बरसों का लंबा अंतराल पार करके गांव चला आया। मेरी पत्नी और बेटा भी मेरे साथ थे। दूर से देखा मैंने गांव के अपने घर को, गोया अंतरिक्ष से देखा मैंने धरती उर्वर को। मन में एक धुकधुकी भी थी कि मेरी अधेड़ आंखें मेरे बचपन के दृश्यों का सामना अब न जाने कैसे कर पाएंगी। मेरे ज़हन में बचपन के मधुर दिनों की स्मृतियां लौटने लगीं लेकिन गांव अब पहचाना भी नहीं जा रहा था। वह जैसे एक बाज़ार में तब्दील हो चुका था। अब घरों में घुस आया था बाज़ार।

जा चुका था। वह मेरा पहले वाला गांव नहीं रहा था। वह अपना अक्षत क्वांरापन खो चुका था।

गांव के पूरब और पश्चिम में उगा जंगल काट दिया गया था। वहां कारें बनाने वाली एक विदेशी कंपनी ने अपना प्लांट लगा लिया था। इस कंपनी ने हर तरह के हथकंडे अपना कर कई गांववालों से भी उनकी ज़मीन ख़रीद ली थी। उत्तर में बहती नदी पर बांध बन गया था। इसकी चपेट में आने से हमारा गांव तो बच गया था लेकिन उत्तर में बसे कई गांव बांध के पानी में डूब गए थे और वहां के लोग विस्थापित हो गए थे।

लेकिन जो बात आपको चौंका देगी, अब वह सुनिए। गांव से दो मील दूर दक्षिण में स्थित दलदल को टनों मिट्टी डालकर बिल्कुल भर दिया गया था। इस ठोस बना दी गई ज़मीन पर विदेशी सामान बेचने वाली कई दुकानें खड़ी हो गई थीं। उस पुराने दलदल के स्थान पर अब बाज़ार मौजूद था। बाज़ार का नया 'दलदल'—मैंने सोचा।

ख़ैर। समय कब का करवट बदल चुका था। फिर मैं अपने दुःस्वप्नों के जाल में अब तक क्यों फंसा हुआ था? वहां खड़े-खड़े मैं बहुत देर तक यही सब सोचता रहा।

मैं सुब्रोतो की याद में कुछ करना चाहता था। मैंने गांव में ज़मीन ख़रीदकर एक अस्पताल बनाने का फ़ैसला किया। मैंने वही ज़मीन ख़रीद ली जहां पहले दलदल हुआ करता था और अब दुकानें थीं। दुकानें तुड़वाकर मैंने वहीं अपने बचपन के मित्र के नाम पर 'सुब्रोतो मुखर्जी चैरिटी अस्पताल' बनवाया। अब इस अस्पताल में इलाक़े के ग़रीब और बीमार लोगों की मुफ़्त देखभाल होती है।

इतनी कहानी सुनाकर बूढ़ा ख़ामोश हो गया। मैंने खिड़की से बाहर देखा। बाहर हवा चुप थी। सामने मैदान में खड़े पेड़ चुप थे। वहीं बेंच के नीचे बैठा रोज़ अपनी ही दुम से झगड़ने वाला लंगड़ा कुत्ता चुप था। एक सिमसिमी ख़ामोशी चू-चू कर सड़क की छाती पर बिछती जा रही थी और सड़क चुप्पी की केंचुल उतार फेंकने के लिए कसमसा रही थी।

आख़िर सघन चुप्पी को रौंदते हुए बूढ़े की भारी आवाज़ फिर गूंजी, 'अपने डर से कभी मत डरो। डर को देखकर अपनी आंखें कभी मत मूंदो क्योंकि जो डर गया, समझो वह जीते-जी मर गया'। आपके मामले में वह डर क्या है, मुझे नहीं पता। पर मेरे मामले में वह डर दलदल था। ❑

कृपया ध्यान दें

चंदा भेजने और चंदे के बारे में पूछताछ के लिए अथवा पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में कृपया वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक से सीधे संपर्क करें।

पता :

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

फ़ोन : 26100207 / 26175516

ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

दो लघुकथाएं : **विजया लक्ष्मी सिन्हा**

मज़ाक

हवेली ढोलक की थाप और शादी के गानों से गूंज रहा थीं। दूर-दराज़ के रिश्तेदारों से घर भरा पड़ा था। एक अर्से के बाद मंझले भाई की बेटी रानो की शादी में सारे चचेरे-ममेरे भाई-बहन इकट्ठे हुए थे...उनकी शैतानियां घर को गुलज़ार किए दे रही थीं। कोई किसी की सुनने को तैयार नहीं था। सब खेलने, हंसी-मज़ाक में इस तरह मशगूल थे मानो कब के बिछड़े अब मिले हैं और आगे की कौन जाने कब ऐसा मौक़ा हाथ आए।

चार भाइयों का संयुक्त परिवार इस हवेली में रहता था किंतु अब धीरे-धीरे यहां भी सन्नाटा पसर रहा था। जहां घर के बड़े लड़के नौकरी के लिए दूसरे शहरों का रुख़ कर रहे थे वहीं बेटियां शादी के बाद विदा होकर दूसरे घर जाने को मजबूर थीं। इसलिए हवेली में सबसे मिलकर बच्चे खेल-खेल कर पागल हुए जा रहे थे। उसी समय मंझले भाई के छोटे लड़के 'साहेब' क़द से नाटे और शरीर से काफ़ी मोटे थुल-थुल गले में बड़े-बड़े गेंदे के फूल की माला पहने उस महफ़िल में दाख़िल हुए। सभी बच्चों ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया किंतु उनकी नज़र अपने हमउम्र चचेरे भाई को ढूंढ रही थी। उसे देखते ही उन्होंने आवाज़ दी....''रामू देख मैं क्लास में फट हो गया।'' सभी बच्चे चिल्लाने लगे साहेब भइया की जय-जय। ''साहेब भइया की जय जय।'' कुछ गेंदे के फूलों को छूने लगे, कुछ मसलने लगे। साहेब अपनी पूरी ताकत लगाकर चीख़ पड़ा....अरे-रे तुम सबको जलन हो रही है क्या? शोरगुल सुनकर साहेब की मां दौड़ती हुई आईं...देखते ही पूछा....

''क्या है रे साहेब? यह माला वाला?''

''मां, मैं कलास में फस्ट हो गया'' और उसने झुककर मां के पैर छू लिए। मां का चेहरा खुशी से दमक उठा और उन्होंने बेटे को कलेजे से लगा लिया—''मैं कहती थी न मन लगाकर पढ़ेगा तो क्यों नहीं फर्स्ट होगा।''

साहेब चार साल से आठवीं कक्षा में फ़ेल हो रहा था। उसके हमउम्र, संगी-साथी सभी दसवीं कक्षा में पहुंच गए थे यहां तक कि उनकी भतीजी जो उम्र में उनसे छोटी थी वह भी उनसे आगे बढ़ गई थी।

वादे के मुताबिक अच्छे नंबरों से पास हो जाने पर पिताजी ने शादी में पहनने के लिए अच्छे कपड़े दिलवा दिए। दादा जी ने जूते ख़रीद दिए। इस तरह सजधज कर साहेब ने शादी में खूब डांस किया, खूब खाया-पिया और दूसरे बच्चों के साथ खूब मज़े किए किंतु रामू को यह बात बहुत खटक रही थी...साहेब यूं फ़ेल होते-होते फ़र्स्ट कैसे हो गया? उसने बात की तह तक जाने की सोची। जब रानो विदा हो गई और घर के बड़े-बूढ़े अपने-अपने कमरों में आराम करने चले गए तो मौक़ा देखकर रामू ने साहेब से कहा—

''साहेब कल तो हमलोग भी बनारस लौट जाएंगे। तुमसे तो यार



इस बार बात ही नहीं हुई।''

''हां यार मुझे भी तो तुमसे बातें करनी हैं''—साहेब ने भी रहस्य भरी मुस्कान बिखेरते हुए कहा।

दोनों हाथ में हाथ डाले इधर-उधर की बातें करते हुए हवेली की छत पर पहुंच गए। एक कोने में जाकर दोनों सटकर बैठ गए।

''हां साहेब अब बता तू क्या कह रहा था?''

''अरे यार तू भी तो मुझसे कुछ बातें करना चाह रहा था।''

वैसे वे दोनों चचेरे भाई थे पर साथ ही अच्छे दोस्त भी थे।

किंतु अब कहने की बारी आई साहेब की, तो वह हिचकिचाने लगा। वह समझ नहीं पा रहा था कि रामू से अपने दिल की बात कहे या न कहे।

बात आगे बढ़ती, इसके पहले ही मां की तीखी गुस्से से भरी चीख़ती आवाज़ ने साहेब को चौंका दिया।

''साहेब-साहेब कहां हो जल्दी आओ।''

वे दोनों ही सीढ़ीयों से धड़ाधड़ उतर रहे थे। तभी साहेब की नज़र स्कूल के प्रिंसिपल पर पड़ी जो काफ़ी गंभीर मुद्रा में पिताजी से बातें कर रहे थे। पिताजी गुस्से से कांप रहे थे...

'साहेब तुम फ़ेल हुए ये तो कोई नई बात नहीं पर तुमने हम सबको झूठ बोलकर धोखेबाज़ी की, छी इतना बड़ा झूठ!''

मां ज़ार-ज़ार रोए जा रही थी। रामू स्तब्ध और मुरारी शर्मिंदा। उसे आज सच्चाई का एहसास हुआ कि खेल-खेल में उसने जो मज़ाक किया था, आज वह भड़ास मज़ाक बनकर उस पर ही ठहाके लगा रहा था।

बदला

कामकाजी महिलाएं शाम को जल्दी से जल्दी घर लौटना चाहती हैं ताकि घर के काम भी जल्दी-जल्दी निबटा सकें।

मेट्रो स्टेशन से बाहर आते ही मिसेज़ शर्मा ने क़तार में खड़े रिक्शेवालों से पूछताछ शुरू की। उन्होंने सारे तिकड़म भिड़ा लिए...किंतु कोई भी रिक्शावाला पच्चीस रुपये से कम भाड़े पर जाने को तैयार नहीं था।

तीन वासंती गीत : **मदन मोहन पाण्डेय**

जन के मन में उतरो वसंत

जगजीवन में बिखरो वसंत
सौ रंगों से संवरो वसंत
है हवा यहां सहमी-सहमी
अनजाने भय से थमी-थमी
इसकी काया उतरो वसंत
ठंडे अंधड़ से लड़-लड़कर
श्रीहीन हुए जो शैल-शिखर
इनको अपना वर दो वसंत
जो हैं पलाश शिखरों से अनुरंगित आकुल
अंधियारों में उजियारों के हित प्रश्नाकुल
उनके मन से, जन के मन में उतरो वसंत!

यौवन-उमंग

पत्ती-पत्ती पर अरुण रंग
मन में उतरी यौवन-उमंग
फूलों के रंग हुए गहरे
स्वप्नों ने तोड़ा दिए पहरे
बहती पुरवा के संग-संग
लो हरष उठे मन हारिल के
बंधन टूटे मलयानिल के
जागा धरती का अंग-अंग
पत्ती पत्ती पर अरुण रंग
मैं नभ पर नाम लिखूं उसका
निशि दिन सपना देखा जिसका
दिशि-दिशि में भर दूं राग-रंग।

पाहुन

जब जब पाहुन बनकर के तुम
द्वार हमारे आए
मन के उपवन में कितने ही
चंदन वन उग आए
बिन मौसम फूलों पर छाया
सतरंगा मधुमास
बिन सुर, राग बहा नस-नस में
गीतों का एहसास
इंद्रधनुष के सात रंग
नैनों में आन समाए
ऐसी प्यास जगी
सागर भी शरमाए
अनथक पीती रही आंख
उस छवि को बिना अघाए
मन मानो डूबा समाधि में
बिन अनहद गुन गाए।

संपर्क : कैलाश गेट, मुनि की रेती, ऋषिकेश, जिला टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

एक तो दिन भर की थकान और अब घर जाने में देरी से वे बुरी तरह चिढ़ गईं।

"पच्चीस रुपये क्यों? रोज़ आती-जाती हूं, कल तक तो हमने रिक्शा भाड़ा पंद्रह रुपये ही दिए हैं।"

"आज से दस रुपये बढ़ गए हैं मेम साहब"—रिक्शावाले ने कहा। सवारी को देखकर रिक्शावाले भांप लेते हैं कि अकेली औरत है, करेगी क्या। हारकर उन्हें रिक्शा लेकर ही घर जाना पड़ेगा। हुआ वही जो अनुमान था।

मिसेज़ शर्मा एक रिक्शे पर बैठ गईं। वे लाचार थीं। उनकी सोसायटी इतनी करीब भी नहीं थी कि वे पैदल चलकर जा सकतीं किंतु रिक्शे पर बैठने के बाद भी उनका गुस्सा कम नहीं हुआ। रास्ते भर वह बड़बड़ाती रहीं—"क्या गुंडागर्दी है...आज से दस रुपये बढ़ा दिए मेमसाब, खूब मनमानी चलती है इनकी...जब चाहा तब बढ़ा दिए।"

आख़िर वे सोसायटी के गेट तक पहुंच गईं। अक्सर रिक्शेवाले सवारी को सोसायटी के गेट पर ही उतारकर चले जाते हैं। सोसायटी में रहने वाले अपनी गाड़ियों को ही अंदर ले जा सकते हैं और कुछ नहीं। गेट पर पहुंचते ही मिसेज़ शर्मा को रिक्शावाले को थोड़ा परेशान करने की तरकीब सूझी। वह गार्ड को पुकार कर यथासंभव अपनी आवाज़ को मधुर बनाकर बोलीं—"गार्ड भैया, मेरे पैर में मोच आ गई है। दर्द से मैं चल नहीं पा रही हूं। भैया, रिक्शेवाले को अंदर जाने की अनुमति दे दें।"

गार्ड ने भी जैसे एहसास करते हुए बड़ी आजीज़ी से कहा—"ठीक है, ठीक है ले जाइए।"

गेट के अंदर घुसने के स्थान पर काफी ऊंचाई थी। रिक्शावाला बार-बार पीछे की ओर लुढ़क रहा था। मिसेज़ शर्मा रिक्शे पर निश्चिंत बैठी थीं। इवनिंग वॉक कर रही उनकी पड़ोसन ने जब यह नज़ारा देखा तो कुछ समझ नहीं पाईं। सुबह तक तो वे ठीक-ठाक ही थीं....पता नहीं दफ़्तर में क्या हो गया। थोड़ी दूर पर रुककर वह इंतज़ार करने लगीं कि शायद रिक्शावाला ही चढ़ा न पाए और उन्हें उनकी सहायता की जरूरत पड़ जाए। लगातार कोशिश करते-करते रिक्शावाला पसीने-पसीने हो रहा था, पर उसने भी हार नहीं मानी। पांचवीं बार उसे सफलता मिल ही गई और वह को रिक्शे को तेज़ी से चलाता हुआ उनकी अपार्टमेंट की तरफ़ बढ़ा। पड़ोसन भी रिक्शे के पीछे-पीछे तेज़-तेज़ चलती आईं। शायद मिसेज़ शर्मा ने उन्हें पीछे आते हुए देख लिया था। वे तेज़ी से रिक्शे से उतरीं, रिक्शावाले को पैसे थमा तीर की तरह बिल्डिंग की सीढ़ियों की ओर दौड़ीं और धड़ाधड़ सीढ़ियां चढ़ने लगीं। रिक्शावाला पसीने पोंछता हुआ पैसे अपनी कमर में लगी पॉकेट के हवाले करता वापस जा रहा था। मिसेज़ शर्मा को संतोष हो गया था कि उन्होंने थोड़े पैसे तो रिक्शेवाले से वसूल ही लिए हैं। पड़ोसन को भी माजरा कुछ-कुछ समझ में आ गया था। साथ ही उन्हें कुछ और भी याद हो आया था जब पैर से ज़ख़्मी एक रिक्शेवाले ने उनके सहानुभूति के शब्दों के उत्तर में कहा था—"रिक्शा पैर से नहीं, पेट से चलता है मेमसाहब!" ❑

संपर्क : ए-402, डॉक्टर्स पार्क, सेक्टर-5, वसुंधरा, ग़ाज़ियाबाद-201012 (उ.प्र.)

जन्मशताब्दी पर विशेष

अमर गीतों के रचयिता

प्रदीप सरदाना

'ऐ मेरे वतन के लोगो, ज़रा आंख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुरबानी' यह वह गीत है जिसे सुनते-गाते आधी सदी से भी ज्यादा बीत गई लेकिन आज भी जब यह गीत कहीं भी गाया, सुना या पढ़ा भी जाता है तो कई आंखों से अश्रु धारा बहने लगती है। गीत का मर्म एक एक शब्द में झलकता है। इस अमर गीत के रचयिता कवि प्रदीप ने जब यह गीत लिखा था तो वह भी गीत लेखन के समापन के बाद अपने आंसू रोक नहीं पाए थे। आज यह गीत देश भक्ति की काव्य धारा में कुछ वैसे ही स्थापित हो चुका है जैसे क्षितिज में ध्रुव तारा। देश भक्ति के बाकी गीतों की चमक फीकी पड़ सकती है लेकिन इस गीत की चमक आज भी ज्यों की त्यों है।



ऐसे बहुत कम गीत होते हैं जो पहली बार सुनने या गाने पर ही लोगों के दिलों में घर कर जाएं। कुछ गीतों की लोकप्रियता समय के साथ बढ़ती है और कुछ बार-बार सुनने पर मन-मस्तिष्क में उतारते हैं लेकिन प्रदीप ऐसे गीतकार रहे जिनके एक नहीं अनेक गीत पहली बार में ही श्रोताओं को अपने शब्द जाल में बांध लेते हैं। 'ऐ मेरे वतन के लोगो' को भी जब पहली बार 26 जनवरी 1963 में दिल्ली के रामलीला मैदान में स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर ने गाया तो इसे सुनने वाले हर व्यक्ति की आंखें छलक आई थीं जिनमें वहां मंच पर आसीन तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू भी थे। इस गीत को सुनने के बाद पंडित जी ने लता जी और फिर प्रदीप जी दोनों से कहा था कि इस गीत के हर शब्द में दर्द और शहीदों की कुरबानी झलकती है। इसे सुन मैं भी अपने आंसू रोक नहीं पाया। दरअसल यह गीत प्रदीप जी ने सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध के दौरान हुए शहीदों को श्रद्ध ांजली देने के लिए लिखा था लेकिन यह गीत सैनिक वीर गाथा की अद्भुत मिसाल बन गया है। इस गीत की लोकप्रियता आज भी कायम रखने में बेशक गायिका लता मंगेशकर और इसके संगीतकार सी. रामचंद्र का भी योगदान कम करके नहीं आंका जा सकता लेकिन इस गीत का जन्म या किसी भी गीत का जन्म उसके शब्दों के साथ ही होता है। यदि शब्द ही सुंदर नहीं होंगे तो उस पर स्वर और संगीत का शृंगार भी लगभग व्यर्थ ही जाता है। इसीलिए इसकी सफलता, लोकप्रियता का पहला श्रेय गीतकार कवि प्रदीप को ही जाता है जिनकी योग्यता और बहुमुखी प्रतिभा के लिए भारत सरकार ने उन्हें देश के सर्वोच्च फिल्म सम्मान 'दादा साहेब फाल्के' से सम्मानित किया था।

सैकड़ों लोकप्रिय और मर्मस्पर्शी गीतों के रचयिता, गायक, संगीतकार और कवि प्रदीप की जीवन गाथा बहुत रोचक और प्रेरणादायक है। उज्जैन के बडनगर कस्बे में रहने वाले नारायण भट्ट के यहां जब 6 फरवरी 1915 को पुत्र ने जन्म लिया तो उसका नाम रामचंद्र नारायण द्विवेदी रखा गया। पिता ने रामचंद्र को शिक्षक बनाने का सपना देखा और उनके बाल्यकाल से ही अच्छी शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। पहले कक्षा 7 तक वह इंदौर के शिवाजी राव विद्यालय में पढ़े और उसके बाद इंटर तक की पढ़ाई उन्होंने इलाहाबाद के दारागंज हाईस्कूल से की और फिर लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने स्नातक की शिक्षा पूर्ण की। सन् 1933 से 1935 के दौर में जब रामचंद्र इलाहाबाद में पढ़ते थे तो उन दिनों इलाहाबाद शिक्षा और साहित्य का ऐसा गढ़ था जहां उस समय हरिवंशराय बच्चन और महादेवी वर्मा सहित कई प्रसिद्ध कवि और साहित्यकार रहते थे। वहां की हवाओं में बह रही काव्य और साहित्य की लहर का असर रामचंद्र द्विवेदी पर ऐसा पड़ा कि उनका कवि हृदय इस दिशा में जाने को मचलने लगा। हालांकि अपने पिता की इच्छा का सम्मान करते हुए उन्होंने कुछ समय शिक्षक के रूप में प्रशिक्षण भी लिया और साथ-साथ अपनी कविता भी लिखते और सुनाते रहे। संयोग से हालात ऐसे बने कि ग्रीष्म अवकाश के दिनों में वह अपने एक मित्र के यहां मथुरा गए जहां उनकी मुलाकात कला साहित्य के एक विद्व ान अहमदाबाद के रविशंकर रावल से हुई। जब उन्होंने द्विवेदी की कविताएं आदि सुनी तो वह उनसे काफ़ी प्रभावित हुए और उन्हें अपने साथ अहमदाबाद ले गए। वहां उनकी कविताओं की पुस्तक प्रकाशन की योजना भी बनी तभी रावल के मुंबई में रह रहे पुत्र की तबियत कुछ ख़राब हुई तो रावल मुंबई जाने लगे। द्विवेदी जी उनसे बोले, "मैं आपके बिना यहां क्या करूंगा, मैं भी मुंबई साथ चलता हूं।"

मुंबई में उन दिनों स्वतंत्रता आंदोलन की तो धूम थी ही साथ ही हिंदी सिनेमा का भी तब विकास होना शुरू हो गया था। द्विवेदी जी ने तब स्वतंत्रता आंदोलन में दिलचस्पी लेने के साथ अपनी कविताओं को वहां के कवि सम्मलेन सहित अन्य कार्यक्रमों में सुनाना शुरू कर दिया। एक कार्यक्रम में उन्हें एक फिल्मकार एन. आर. आचार्य ने सुना तो तो उन्होंने उसका ज़िक्र तब की मशहूर फिल्म निर्माण संस्था बॉम्बे टॉकीज के मालिक हिमांशु राय से किया कि इन दिनों मुंबई में मध्य प्रदेश का एक बहुत अच्छा कवि आया हुआ है जो गाता भी काफ़ी अच्छा है। हिमांशु राय ने यह सुन आचार्य को अपनी गाड़ी देते हुए कहा कि उस व्यक्ति को मुझे भी सुनाओ। आचार्य हिमांशु की गाड़ी में रामचंद्र को बैठा कर उनके स्टूडियो ले आए। हिमांशु दा उस समय के ऐसे कला पारखी थे जिनको प्रतिभा की ज़बरदस्त पहचान थी। उन्होंने रामचद्र को सुना तो वह दंग रह गए। उन्होंने तभी द्विवेदी जी को 200 रुपये एडवांस थमाते हुए कहा कि तुम अब से हमारे यहां 200 रुपये माह के वेतन पर नौकरी करोगे। परंतु सिने नगरी में यह पंडितों वाला नाम नहीं चलेगा।

नाम बदलो। बस तभी से रामचंद्र द्विवेदी ने अपना नाम प्रदीप रख लिया लेकिन प्रदीप के साथ उन्होंने कवि लिखना तब शुरू किया जब डाकिया से लेकर अन्य कई लोगों को उनके और तब के प्रसिद्ध अभिनेता प्रदीप कुमार के बीच भ्रम होने लगा।

मुंबई में बरसों से अपनी किस्मत आज़माने प्रति दिन सैकड़ों लोग पहुंचते हैं लेकिन वहां बहुत कम लोग ही काम पाने में सफल हो पाते हैं लेकिन काम पाने के बाद भी आगे की सफलता और लोकप्रियता तो सिर्फ चंद लोगों को नसीब होती है। प्रदीप जी उन भाग्यशाली लोगों में से रहे जिन्हें काम मिलने के साथ तुरंत सफलता भी मिल गई। जब वह मुंबई पहुंचे तब उनकी उम्र सिर्फ 23 साल थी। सन् 1939 में उन्हें बॉम्बे टॉकीज की पहली फिल्म 'कंगन' मिल गई। अपनी इस पहली ही फिल्म से प्रदीप जी को 4 गीत लिखने के साथ उनमें से तीन गीत को खुद गाने का मौका भी उन्हें मिल गया। फिल्म प्रदर्शित हुई तो यह हिट हो गई और फिल्म ने रजत जयंती मनाई लेकिन बड़ी सफलता प्रदीप को उनकी 1940 में आई अगली फिल्म 'बंधन' से मिली। इस फिल्म के लिए लिखे उनके गीत चना जोर गरम, पियू पीयू बोल प्राण पपीहे और रुक न सको तो जाओ, तो मशहूर हुए ही लेकिन इस फिल्म के जिस गीत ने लोकप्रियता के कई आयाम तोड़कर प्रदीप को भी लोकप्रिय बना दिया वह गीत था—चल चल रे नौजवान। यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि आज़ादी के आंदोलन के उस दौर में यह प्रभात फेरियों में गाया जाने लगा। सिनेमा घरों में हालात यह बन गए कि फिल्म खत्म होने बाद दर्शक इस गीत को एक बार और चलाकर दिखाने के लिए शोर मचाने लगते थे। उस समय के अविभाजित भारत की पंजाब और सिंध विधानसभा में तो 'चल चल रे नौजवान' को राष्ट्रीय गीत बनाने का प्रस्ताव भी रखा गया।



कवि प्रदीप अपनी पत्नी और दोनों बेटियों के साथ

यह वह दौर था कि फिल्म के गीतों के बोल और धुन के लिए कई-कई दिन तक दिन-रात मेहनत की जाती थी। तेज़ गर्मी के दिनों में प्रदीप जी ने तब यह गीत बॉम्बे टॉकीज के प्रांगण में एक पेड़ के नीचे बैठकर लिखा था। मगर गीत तो लिख गया पर इसकी धुन बनाने के लिए जब संगीतकार रामचंद्र पाल और सरस्वती देवी ने कोशिश की तो उन्हें यह काम मुश्किल लगा। वहां साथ बैठे अभिनेता अशोक कुमार ने खुद हारमोनियम उठाकर इसकी कुछ धुन बनाई। पर जब वह भी पूरे गीत को उस धुन में ढालने में अटक गए तब उनकी बहन सती देवी ने अशोक कुमार की बनाई धुन को आगे तक ले जाकर पूरा किया। सबकी मेहनत रंग लाई और यह गीत ज़बरदस्त लोकप्रिय हो गया। यहां तक कि 'बंधन' ने स्वर्ण जयंती मनाई। इसके बाद प्रदीप ने 1941 में फिल्मिस्तान की झूला, नया संसार और अंजान जैसी फिल्मों के गीत भी लिखे लेकिन जिस फिल्म ने प्रदीप जी की किस्मत बदल दी वह फिल्म थी सन् 1943 में आई 'किस्मत'।

'किस्मत' फिल्म का नाम देश की पहली सबसे बड़ी सुपर हिट फिल्म के रूप में इतिहास में दर्ज है। यह फिल्म तीन साल से भी अधिक तक चलती रही लेकिन यह फिल्म अपने कई अन्य रिकॉर्ड्स के साथ गीत-संगीत के माध्यम से जन मानस में स्वतंत्रता के प्रति अनुपम उत्साह भरने के लिए भी याद की जाती है। प्रदीप के साथ बॉम्बे टॉकीज की फिल्मों में इस बार फिल्म के संगीतकार अनिल बिस्वास थे। फिल्म में प्रदीप जी ने 7 गीत लिखे थे जिनमें अधिकांश को लोकप्रियता मिली। जैसे—धीरे धीरे आ रे बादल, घर-घर में दीवाली है, तेरे दुःख के दिन फिरेंगे लेकिन जिस गीत ने इतिहास रचा वह था—आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है, दूर हटो ऐ दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है। प्रदीप जी के लिखे इस गीत ने लोगों में उत्साह भर उनके विचारों में क्रांति ला दी थी। प्रदीप के गीत, अनिल बिश्वास का संगीत तथा अमीरबाई और अरुण कुमार जैसे पार्श्व गायकों के स्वरों में फिल्म के गीतों का जादू लोगों के सर चढ़कर बोलने लगा था। सिनेमाघरों में तो इस गीत के दौरान दर्शक नाचते-झूमते ही थे। सिनेमा के बाहर निकलने पर भी यह गीत उनके साथ हो लेता था जिससे घर-घर में इस गीत के स्वर गूंजने लगे। गीत का लोगों पर ज़बरदस्त असर देखने पर अंग्रेजी शासन विचलित हो चुका था। यहां तक कि प्रदीप जी की गिरफ्तारी की भी बात आई लेकिन यह देख कुछ दिन के लिए प्रदीप जी को छिपकर रहने के लिए विवश होना पड़ा।

देश भक्ति गीतों के कवि के रूप में हुए विख्यात प्रदीप जी के कवि मन में आज़ादी के प्रति जोश देखते ही बनता था। तभी उनके गीत हृदय से निकलते प्रतीत होते थे। देश भक्ति के गीत तो वह लगभग आरंभ से ही लिख रहे थे लेकिन 'किस्मत' के बाद उन्होंने अपना ज्यादा ध्यान देश भक्ति और धार्मिक गीत लिखने में लगाया। इधर 'किस्मत' के बाद प्रदीप जी ने बॉम्बे टॉकीज की नौकरी छोड़ दी थी। हालांकि करीब 5 बरस की नौकरी में उनका वेतन 200 से बढ़कर 1500 रुपये हो गया था। लेकिन इस बीच उन्हें नौकरी देने वाले हिमांशु राय का निधन हो गया। उनके बाद प्रदीप का मन यहां उतना सहज नहीं था। हिमांशु की पत्नी और अभिनेत्री देविका रानी से उनकी पटरी ठीक नहीं बैठ रही थी। इसलिए वह और कुछ अन्य लोग बॉम्बे टॉकीज छोड़ कर फिल्मिस्तान संस्था से जुड़ गए। फिल्मिस्तान ने 1944 में प्रदीप के ही लोकप्रिय गीत 'चल चल रे नौजवान' पर इसी नाम से फिल्म बनाई। हालांकि वह फिल्मिस्तान में आकर भी ज्यादा खुश नहीं हो पाए। उनकी बहुमुखी प्रतिभा उन्हें हमेशा कुछ नया और बहुत कुछ करने के लिए प्रेरित करती रहती थी।

बहुत कम लोग जानते हैं कि प्रदीप जी ने सन् 1949 में निर्देशक ज्ञान मुखर्जी और अमिय चक्रवर्ती के साथ मिलकर 'लोकमान्य प्रोडक्शन' के नाम से एक फिल्म कम्पनी बनाकर एक फिल्म 'गर्ल्स स्कूल' का निर्माण किया था। फिल्म में गीता बाली, शशि कला जैसी अभिनेत्रियां थीं लेकिन फिल्म चली नहीं। प्रदीप जी को काफी आर्थिक हानि का सामना करना पड़ा। उधर से बाद में उनके पास पहले जितना काम नहीं रहा। इससे जब प्रदीप का बहुमुखी प्रतिभा का मन कुछ अशांत हो गया जबकि प्रदीप तब काफी लोकप्रिय हो चुके थे। वह गीत लिखने के साथ गीत गा भी रहे थे और कुछ जगह संगीत भी देने लगे थे। उसी दौरान नौशाद ने प्रदीप जी से फिल्म 'बैजू बावरा' के गीत लिखने की बात की हुई थी लेकिन जब फिल्म शुरू हुई तो नौशाद ने उनकी जगह शकील बदायूंनी को ले लिया। इससे प्रदीप का आहत होना स्वाभाविक था। उनकी इस वेदना को संगीतकार एस. डी. बर्मन ने समझ उन्हें व्यक्तिगत रूप से सलाह दी कि प्रदीप जी आप स्वयं संगीत भी देने लगे हैं तो इससे कुछ संगीतकार आपके साथ काम करने से कतराने लगे हैं। उन्हें लगता है कि आप तो उनका काम भी छीनना चाहते हैं। इसलिए बेहतर होगा कि आप सिर्फ गीत लिखें या फिर कोई कभी आपसे गवाए तो गीत

गा भी दें लेकिन संगीत आप न दें। सचिन दा की बात में प्रदीप जी को दम लगा। उन्होंने उनका इसके लिए धन्यवाद भी किया और बाकी सब भूलकर अपना पूरा ध्यान गीत लिखने पर लगा लिया। इससे प्रदीप के पास फिर से काफी काम आ गया और बीच-बीच में कुछ संगीतकार उनसे गवाते भी रहे।

प्रदीप की लेखनी की तरह उनके स्वर में भी एक अलग कशिश थी। उनकी आवाज़ एक आम व्यक्ति की भावना और उसके दर्द को उजागर करती हुई लगती थी। इसी कारण वह जहां जनमानस के कवि के रूप में उभरे वहां गायक के रूप में भी उन्हें काफी सफलता, लोकप्रियता मिली। सी. रामचंद्र, हेमंत कुमार, सरस्वती देवी, रामचंद्र पाल और लक्ष्मीकांत प्यारेलाल सहित कुछ अन्य संगीतकारों ने प्रदीप की गायन प्रतिभा का अच्छा इस्तेमाल किया। प्रदीप जी के गाए गीतों में आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की, पिंजरे के पंछी रे, टूट गई है माला मोती बिखर गए, कोई लाख करे चतुराई, दूसरों का दुखड़ा दूर करने वाले, पिंजड़े के पंछी रे और देख तेरे संसार की हालत क्या हो गयी भगवन कितना बदल गया इंसान जैसे कई गीत तो आज भी लोकप्रिय हैं।

राष्ट्र प्रेम के गीतों के गीतकार के रूप में तो प्रदीप सबसे आगे दिखाई देते ही हैं। उनके लिखे—ऐ मेरे वतन के लोगो, आज हिमालय की चोटी से, चल चल रे नौजवान और आओ बच्चो तुम्हें दिखाएं, के अतिरिक्त दे दी हमें आज़ादी बिना खड्ग बिना ढाल, हम लाये हैं तूफान से कश्ती निकाल के, इंसान का इंसान से हो भाईचारा, जन्मभूमि मां और सुनो-सुनो देश के हिंदू-मुसलमान देश भक्ति और राष्ट्रीय एकता के ऐसे गीत हैं जो आज भी प्रासंगिक हैं।

प्रदीप ने धार्मिक गीतों को भी जिस खूबसूरती और भावना से लिखा है वह सब भी अनुपम है। उनके ऐसे गीतों में एक से एक मिसाल है। इनमें 'नास्तिक' फिल्म का कान्हा बजाए बांसुरी और जय जय राम रघुराई हो या 'हरिदर्शन' फिल्म के मारने वाला है भगवान बचाने वाला है भगवान, प्रभु के भरोसे हांको गाड़ी और जय जय नारायण हरी। ऐसे ही 'वामन अवतार' फिल्म का तेरे द्वार खड़ा भगवान, 'चक्रधारी' फिल्म का काहेको बिसरा हरिनाम, 'दशहरा' फिल्म का दूसरों का दुखड़ा दूर करने वाले, 'चल चल रे नौजवान' का 'हर हर महादेव', 'अल्लाह ओ अकबर' और 'जय संतोषी मां' के तमाम गीत मैं तो आरती उतारूं रे, यहां वहां जहां तहां तथा करती हूं तुम्हारा व्रत मैं स्वीकार करो मां के साथ 'बजरंगबली' का है मारुती सारी राम कथा। यहां तक कि फिल्म सन् 1954 में आई 'नास्तिक' फिल्म से प्रदीप ने गरबा गीत लिखकर फिल्मों में इसके प्रचलन की शुरुआत भी की। उनके लिखे गीतों में धार्मिक फिल्मों की लंबी सूची भी इस बात की साक्षी है कि वह धार्मिक फिल्मों के निर्माताओं में कितने लोकप्रिय थे। उनकी ऐसी प्रमुख धार्मिक फिल्मों में श्रीराम भरत मिलन, बलराम-कृष्ण, सती अनुसुइया, हर हर गंगे, हरी दर्शन, बाल महाभारत, हर हर महादेव, किसान और भगवान, कृष्ण सुदामा, करवा चौथ, सती और भगवान तथा जय बाबा अमरनाथ जैसे बहुत से नाम हैं।

देश भक्ति और धार्मिक गीतों के अलावा प्रदीप के सामाजिक सरोकार के गीत भी काफी लोकप्रिय रहे और दर्द प्रेम के भी। उनके लेखन की विभिन्नता कमाल की है। फिल्म 'संबंध' में उनके लिखे गीत—अंधेरे में जो बैठे हैं नज़र उन पर भी कुछ डालो अरे ओ रौशनी वालो, चल अकेला चल अकेला और जो दिया तुमको एक दिन तो बेमिसाल हैं। उनके अन्य यादगार गीतों में—ऊपर गगन विशाल (मशाल), आज मौसम सलोना सलोना रे (झुला), मैं तो दिल्ली से दुल्हन लाया रे (झुला), मुखड़ा देख ले प्राणी (दो बहनें), ओ अमीरों के परमेश्वर (पैग़ाम), सूरज रे जलते रहना (हरिश्चंद तारामती), आज सुनो हम गीत विदा का (स्कूल मास्टर) और सुख दुःख दोनों रहते (कभी धूप कभी छांव) प्रमुख हैं।

प्रदीप जी उनके विशाल योगदान के लिए संगीत नाटक अकादमी ने तो उन्हें 60 के दशक की शुरुआत में ही तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद द्वारा सम्मानित कर दिया था लेकिन उन्हें दादा साहेब फाल्के जैसा शिखर सम्मान 1998 में तब मिला जब उनकी उम्र 83 बरस की थी। गीतकार के रूप में वह मजरुह सुल्तानपुरी के बाद दूसरे गीतकार थे जिन्हें दादा साहेब फाल्के पुरस्कार मिला। 11 दिसंबर 1998 को उनका निधन हो गया

प्रदीप सादा जीवन और उच्च विचारों वाले व्यक्ति थे। वह गांधीवादी विचारधारा के पक्षधर थे। दयानंद सरस्वती के विचारों को भी उन्होंने काफी सराहा। साथ ही दयानंद सरस्वती के जीवन पर उन्होंने अमर कहानी भी लिखी। वह मुंबई में अपनी पत्नी भद्रा बेन के साथ जिस घर में रहते थे उसका नाम उन्होंने 'पंचामृत' रखा था। उनके खान-पान में सादगी साफ झलकती थी। उन्होंने एक से एक फिल्मकार और संगीतकार के साथ काम किया, लेकिन आधुनिक शहरी संस्कृति को उन्होंने कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। वह फिल्म पार्टियों से भी दूर रहते थे। अपने लेखन में उन्होंने साहित्य की सुंदरता के साथ मधुरता और सरल शब्दों का प्रयोग किया। अपने 60 बरस के फिल्मी जीवन में उन्होंने करीब 80 फिल्मों में गीत लिखे। उनके फिल्मी, गैर फिल्मी गीतों की संख्या लगभग 2 हजार के आसपास है लेकिन उन्होंने अपने लेखन के साथ कभी कोई समझौता नहीं किया। न ही गीतों को लोकप्रिय करने के लिए कभी द्विअर्थी शब्दों का सहारा लिया। ❑

संपर्क : ई -22, हरी विला, विकास मार्ग, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

खंखर भया पलाश

पृष्ठ 30 से आगे

जैसी काली कलियां लगती हैं और जब ये कलियां फूलती हैं तो लगता है जंगल में आग लगी है। पलाश के फल, बकरी के कान जैसे लंबे होते हैं, जिनमें भूरे या काले रंग के सिक्कों के आकार के बीज निकलते हैं। पलाश, मध्य तथा पश्चिमी भारत में पाया जाता है। मैदानी, पहाड़ी व तलहटी, खेतों की मेड़ों में यह आसानी से उग आता है। जब तक जड़ें न उखाड़ फेंकी जाएं—यह हरियाता रहता है।

पलाश में लाल व कत्थई रंग का गोंद निकलता है। इसे बंगाल किनो या बूटेआ-गम कहते हैं। गोंद तथा बीज औषधि के काम आते हैं। गोंद में टेनीन होते हैं जो मुंह के छाले ठीक करते हैं। बीज पेट दर्द, दांत दर्द में काम आता है। पलाश के बीज सैंटोनीना के स्थान पर भी प्रयोग किए जाते हैं। पलाश के बीज पीसकर नींबू के रस में मिलाकर दाद-खाज-खुजली पर लेप करने से मर्ज़ दूर हो जाता है। पलाश की जड़ों का काढ़ा रक्तचाप में प्रभावी है। लकड़ी इमारती काम व रस्सी बनाने के भी काम आती है। लकड़ी पानी में जल्दी सड़ती नहीं है। पलाश के फूलों से आदि काल से रंग बनाया जाता रहा है। पलाश के फूलों को सुखाकर रख लिया जाता है। जब रंग बनाना होता है, फूल पानी में भिगो दिए जाते हैं। पलाश के फूल से ही केसरिया रंग बनता है जो फागुन में होली खेलने में प्रयोग किया जाता है। साधु-संन्यासी केसरिया रंग में ही अपने वस्त्र आज भी रंगते हैं। पलाश की जड़ें रेशेदार होती हैं जिन्हें कूटकर रस्सी बटी जाती है। जड़ों से पुताई करने वाली कूचियां भी बनती हैं। ❑

संपर्क : 109/323, रामकृष्ण नगर, कानपुर-208060 (उ.प्र.)

युवा संगीतकारों का उत्सव

पं. विजयशंकर मिश्र

केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी, संगीत नायक पं. दरगाही मिश्र संगीत अकादमी एवं लोक कला मंच के सहयोग से सम (सोसाइटी फॉर एक्शन थ्रू म्युज़िक) द्वारा पं. दरगाही मिश्र की स्मृति में तीन दिवसीय संगीत उत्सव लोककला मंच सभागार में सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

पहला दिन बाल एवं किशोरवयी कलाकारों के साथ संगीत उत्सव के रूप में मनाया गया। पं. मोहिन्दर सरीन, मृदुला टण्डन, मिताली चक्रवर्ती, विप्लव रेज एवं नवनील चौधरी के सान्निध्य में इस शाम की शुरुआत सरस्वती वंदना से हुई जिसे सार्थक भट्ट, धरा सोनी, महक गोयल, सिया जिंदल, वाणी सेठी, दिया वैद्य, देवश्री श्रीवास्तव एवं कन्दर्प गुप्ता ने प्रस्तुत किया। संगीत निर्देशन संगीता लाहिड़ी श्रीवास्तव का था और तबला संगति जतिन नागपाल का। इसके बाद शाम्भवी भट्ट, अरनी गोयल, ऊर्जा वशिष्ट एवं भव्या नागपाल ने मनोहारी रासनृत्य प्रस्तुत किया। नृत्य निर्देशन नंदनी शर्मा का था। मानस कुलकर्णी का सिन्थेसाइजर वादन और कासवी केजरीवाल, नित्या वैद्य तथा शालू जैन एवं कावेरी बजाज के युगल गायन को भी सराहा गया। कंचन प्रियदर्शनी, अभिप कंसल, निखिल वर्मा, रोनित चक्रवर्ती, मोक्ष प्रसाद, अर्जुन भण्डारी एवं मनमोहन डोगरा द्वारा तीन ताल में प्रस्तुत सामूहिक तबला वादन इस शाम का विशेष आकर्षण था। निर्देशन पं. विजयशंकर मिश्र का था और हारमोनियम संगति शाह आलम की।



अजयिता मुखोपाध्याय

इस शाम दो एकल तबला वादन भी संपन्न हुए। क्षितिज जौहरी ने पंचम सवारी जैसे कठिन ताल में कई महत्वपूर्ण रचनाओं की आकर्षक प्रस्तुति की। उनका वादन काफी प्रशंसित हुआ। आरोह गुप्ता ने अपना प्रभावशाली तबला वादन तीन ताल में प्रस्तुत किया। पेशकार, कायदे, रेले, टुकड़ों और गतों की आकर्षक प्रस्तुति करके आरोह ने लोगों का मन मोह लिया। कार्यक्रम का समापन एक राजस्थानी लोकनृत्य से हुआ जिसे शाम्भवी भट्ट, शिरीन भट्ट और अरनी गोयल ने प्रस्तुत किया। कार्यक्रमों का दिग्दर्शन अजयशंकर मिश्र ने किया। इस अवसर पर एक त्रिदिवसीय चित्र प्रतियोगिता भी संपन्न हुई, जिसमें शुभांक्षी मुखोपाध्याय एवं देवश्री श्रीवास्तव को द्वितीय पुरस्कार मिला।

दूसरे दिन की संगीत संध्या अजयिता मुखोपाध्याय के सुमधुर गायन से आरंभ हुई। अजयिता ने पूरियाधनाश्री में अपनी गुरु सुमित्र गुहा रचित 'बाजे सुर बाजे' से आपने गायन का शुभारंभ किया जो एकताल में निबध था। दूसरी रचना द्रुत तीनताल में थी—'मुश्किल करो आसान।' इन्होंने अपने गायन का समापन एक भजन से किया—'माधव मदन मुरारी।' अजयिता का यह प्रथम मंचीय कार्यक्रम था और अपने प्रथम प्रयास में ही उन्होंने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। उनका गायन अत्यंत सुरीला था, ताने भी काफी तैयार थी। भजन में समर्पण, प्रेम और मनुहार के भावों की अच्छी अदायगी थी। तानसेन श्रीवास्तव (तबला) और अनिल मिश्रा (सारंगी) की संगति अत्यंत सहयोगपूर्ण थी। दिनेश कश्यप (यमुना नगर) ने अपने स्वतंत्र तबला वादन में पंजाब घराने का खास पेशकार कायदा, और रेला बजाने के बाद पं. सुशील कुमार जैन, उस्ताद क़ादिर बख्श, मीरा बख्श घिलवालिये आदि की विशिष्ट गतों की प्रस्तुति की। उल्लेखनीय यह था कि किशोरवयी दिनेश ने अपना प्रभावशाली वादन एकताल में प्रस्तुत किया। हारमोनियम पर विमल कश्यप ने उनका साथ दिया।

इस संध्या का समापन बक्शी विकास (आरा, बिहार) के 'नयनाभिराम' कथक नृत्य से हुआ। शुभारंभ गणेश वंदना-वक्रतुण्ड से करने के बाद 'गाईए गणपति जग बंदन' पर भाव प्रदर्शन करते हुए इन्होंने गणेश की विभिन्न मुद्राओं को आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया। इसके बाद तीनताल में आमद, ठाठ, तोड़े, टुकड़े, परमेलू और परणों आदि की शानदार प्रस्तुति की। माखन चोरी की गत पर उनके गुरु बिरजू महाराज की छाप स्पष्ट दिखाई दी। कार्यक्रम का समापन इन्होंने एक दादरा से किया—'छाडों-छाड़ों बिहारी।' उदयशंकर मिश्र की तबला संगति काफी असरदार थी। उन्होंने विकास की हर रचना को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया। प्रभाकर पाण्डे (आरा) का गायन सुरीला और हृदयस्पर्शी था। अनिल मिश्रा की सारंगी रसपूर्ण । सुमित्र गुहा ने अजयिता मुखोपाध्याय को संगीत रत्न, बख्शी विकास को नृत्य रत्न एवं दिनेश कश्यप को तबला श्री सम्मान से सम्मानित किया।

• यह महीना युवा कलाकारों की दृष्टि से काफी सफल रहा। कई युवा कलाकारों की प्रस्तुतियां हुईं तो कई को सम्मानित भी किया गया। याशिका एजुकेशन सोसाइटी (यश) ने दो कार्यक्रम आयोजित किए। एपी सेंटर गुड़गांव में आयोजित संगीत संध्या में नन्दनी शर्मा (कथक नृत्य), कपिल कुमार (गायन) और लोकेश आनंद (शहनाई) को यश कला कीर्ति सम्मान से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर नंदिनी शर्मा ने भावपूर्ण कथक नृत्य करके यह सिद्ध किया कि वह इस सम्मान की वास्तविक हकदार हैं। यश का दूसरा आयोजन दिल्ली हॉट जनकपुरी में था। पं. विष्वमोहन भट्ट ने अपने मोहन वीणा के तारों को झंकृत कर लोगों की हृदयतंत्री को झंकृत कर दिया। पृथ्वीराज मिश्र की तबला संगति अत्यंत आकर्षक रही। इसके बाद जयपुर घराने के गुरु राजेन्द्र गंगानी ने जयपुर शैली की कई विशिष्ट रचनाएं विशिष्ट अंदाज़ में प्रस्तुत की।

• जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सभागार में आयोजित एक कार्यक्रम में 'पियूश किशन स्मृति सम्मान' बनारस घराने के दो युवा कथक नर्तकों—सौरव मिश्र और गौरव मिश्र को मिला। इस अवसर पर इन दोनों भाईयों ने तेजतर्रार नृत्य प्रस्तुत करके लोगों को चमत्कृत कर दिया। दिल्ली विश्वविद्यालय के गांधी सभागार में सीता बिम्ब्रा की 18वीं पुस्तक 'निर्गुण संत कवियों के काव्य में संगीत तत्त्व' के लोकार्पण के अवसर पर संगीत और साहित्य जगत की कई हस्तियां उपस्थित थीं। मुख्य वक्ता मनमोहन सहगल (पटियाला) और प्रसून लतांत (दिल्ली) थे। इस अवसर पर सीता बिम्ब्रा ने अपने शिष्याओं के साथ मिलकर सुगम संगीत की कई रचनाएं भी प्रस्तुत की। ❑

तीन गीत : गौरीशंकर पाण्डेय 'अरविंद'

विहंसी प्रकृति लली

वन उपवन वसंत लहराया,
तरु-तरु सुरभि हास-रंग लाया,
लता-लता पागलपन छाया,

नाचे कली-कली।
विहंसी प्रकृति 'लली'।

रोम-रोग में हर्ष समाया,
टेसू-टेसू रंग लुभाया,
मलयज का झोंका हरषाया,

टहनी मचल चली।
विहंसी प्रकृति 'लली'।

प्रवही दिश-दिश हवा वसंती,
तरुणी-तरुणी अब रसवंती,
मृदु कपोल भाए मधुवंती,

रसमय सुरभि भली।
विहंसी प्रकृति 'लली'।

शिखा-शिखा सौंदर्य विराजा,
कुंज-गलिन में मधु स्वर गाजा,
पल्लव-पल्लव में रंग राजा,

कलिका सुमन खिली।
विहंसी प्रकृति 'लली'।

मिलन-केलि चाहें लहराईं,
प्रणय-गानवंती उमंगाईं,
ललित-भरित सखियां रसजाईं,

लाली अधर पली।
विहंसी प्रकृति 'लली'

हुलसा प्राण-राग जड़ चेतन,
विलसी ऊर्जा गली-निकेतन,
चुका-भगा पतझर खर, तन-मन,

उमंगी थली-थली।
विहंसी प्रकृति 'लली'।

खिले आनंद के द्वार

पुलक लिए, रंग लिए, आया मधुमास
उत्सव का मोद लिए, छाया मधुमास,
तन-मन की झोली में भर गया हुलास,

लगा, प्रीति आगम है, प्रश्न है संभार।
आया वसंत, खिले आनंद के द्वार।
हंसी सब दिशाएं, गली कुंजों में हास,
वन-उपवन-कानन में फूलों का रास,
कन-कन में, आंगन में मधु ऋतु का वास,
प्रेम-राग आलम है, हार वा कछार।
आया वसंत, खिले आनंद के द्वार।
केशर रंग रंगे घर द्वार और नगर वन,
केसरिया छाया है, वसनों में प्रिया मन,
नयनों में बयनों में प्रीति का सुवास तन,
गोरी की बांहों में मिलन की पुकार।
आया वसंत, खिले आनंद के द्वार।
सरसों व अलसी के फूलों की बहार है,
रंगों का आलम सखी! हार वा मंझार है,
बोलों-कपोलों में मधु का संचार है,
बौर-बौर उमंगा, उत भंवरों का गुंजार।
आया वसंत, खिले आनंद के द्वार।
पात-पात हरषा है वन उपवन हरियाली,
कवियों के कण्ठ खुले उमंगा है वनमाली,
गीतों के बोल मधुर, चंचल हैं कुल आली,
मंद गंध रस भरी सखियां हिय हार।
आया वसंत, खिले आनंद के द्वार।
कानन वा उपवन में पिक पंचम मधुर-मधुर,
तन - मन में राग मोहन उन्मन कुल विधुर-विधुर,
झंकार मधुरिम सखि! देख नुपुर-नुपुर,
फाग मिलन उत्सव आया, जीवन रसधार।
आया वसंत, खिले आनंद के द्वार।

नए का आह्वान फिर-फिर

जब तन-तन में आनंद-मोद छलके उछले,
जब अंतर्मन उल्लास भरे छाए बिछले,
जब सूरज की गर्मी सुकून दे, मत फिसले,
जब वातावरण सकल उमंगे खुशियां तिर-तिर।
नए का आह्वान फिर-फिर।
जब नारी-नर झूमे-नाचे अनुराग भरे,
जब मानव प्रकृति नई चेतनता राग झरे,
जब वंशी कान्हा सुर-लय मधुता-कलश धरे,
जब प्रकृति सिंगारे यौवन को, रह-रह घिर-घिर
नए का आह्वान फिर-फिर।
मानव-मानव का पुनर्जन्म इसमें होए,
नव पात पुष्प सारे विलसें जागें सोए,
उपहार विलक्षण ऋतु संतापों को खोए,
हुलसें झूमें नव बौर डार चंचल भिर-भिर
नए का आह्वान फिर-फिर।
खेतों में सरसों फूल छटा पीली छाए
आनंद राग जीवन छलके सुख उपजाए,
'हुलसाना' 'देना' भाव जमें हिय हरषाए,
जब सृष्टि हेतु शुभ काम जगे मन-मन थिर-थिर
नए का आह्वान फिर-फिर।
ललिता वनिता मस्ती झूमे, संस्कार झमें,
विज्ञान-ज्ञान की देवि शारदा पर्व जमें,
जब ज्ञान विवेक लोक संचरे अरु अनय थमे,
ऊर्जा का अक्षय स्रोत बहे धरती चिर-चिर।
नए का आह्वान फिर-फिर।
फागुन चैता उमंगे डोलें पुरुषार्थ भरें,
तम तमस् जले उजियार जगे, हिय हर्ष झरें,
जय-विजय यात्रा पुलक जने 'धी दिव्य धरें,
नव-नव रचना आशा विहरे जन-जन झिर-झिर।
नए का आह्वान फिर-फिर।

संपर्क : शिक्षालोकम्, 2/5/206, शास्त्रीनगर, फैज़ाबाद (उ.प्र.)

डाक तार पंजीयन सं. डी एल (एस) - 05/3222/2015-17 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली से पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी एन)-49/2012-14

Postal Regn. No. DL (S) - 05/3222/2015-17
Licenced U (DN) - 49/2012-14 to post without pre-payment at RMS Delhi

दिल्ली डाक — आर एन आई 701/57

Delhi Postal — **RNI 701/57**

● 10 जनवरी 2015 को प्रकाशित ● 21-22 जनवरी 2015 को डाक द्वारा जारी

वार्षिक मूल्य : ₹ 100



प्रकाशक व मुद्रक : डॉ. साधना राउत, अपर महानिदेशक एवं प्रभारी द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए एजूकेशनल स्टोर्स, गाजियाबाद (उ.प्र.) से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : राजेन्द्र भट्ट, संपादक : फरहत परवीन